समुद्र में खोया हुआ आदमी

कमलेश्वर

समुद्र में खोया हुआ आदमी

एक था वीरन

घर में सन्नाटा था। अलग-अलग हिस्सों में रहनेवाले लोग चले गए थे। दरवाजों पर ताले पड़े हुए थे। खुली हुई खिड़कियों पर तौलिया, बनियाइन या अण्डरवीयर सूखने के लिए पड़े थे। दस बजते-बजते पूरी इमारत में सन्नाटा छा जाता था…चाहे सुबह के दस हों या रात के। थका-माँदा कोई आता तो उसके भारी कदमों की आहट कुछ देर सुनाई पड़ती। उसके बाद कुछ मिनटों के लिए कमरा जगमगाता। हल्का-हल्का शोर कमरे से आता। फिर सब कुछ शांत हो जाता। बत्ती बुझ जाती।

सामनेवाली लम्बी सफेद दीवार जैसे हमेशा जिन्दा रहती थी। किसी भी कमरे में रोशनी हो, उसका अक्स सामनेवाली दीवार पर जरूर पड़ता था। बाकी तीन दीवारें मुर्दा खड़ी रहती थीं। उनपर कोई हलचल नहीं होती थी।

समीरा ने इस घर में आते ही अपने लिए एक जगह चुन ली थी। जब भी उसे समय मिलता, आसन या अखबार बिछाकर वह ठीक उसी जगह बैठती थी। शाम को या सुबह—जब भी घर में सन्नाटा होता, वह उसी कोने में आकर बैठ जाती। पहली मंजिल के कमरों में रहनेवाले हर आदमी की परछाईं उस दीवार पर डोलती रहती। बड़ी अजीब-अजीब शक्लें दीवार पर उभरती। तीनों कमरों के रहनेवालों की छायाएँ कभी एक-दूसरी-तीसरी को काटती, कभी उनके आकार बहुत डरावने हो जाते।…लेकिन समीरा को इन परछाइयों में उलझे रहना बहुत अच्छा लगता।

…जब से परिवार दिल्ली आया था, उसे सब लोग परछाईं की

तरह ही लगने लगे थे। जिनसे दिल की कोई बात न की जा सके, जिनके साथ सुख-दुःख और अकेलापन बँटाया न जा सके, उन्हें सिवा परछाईं के और क्या समझा जाए! जो साथी-सहेलियाँ उस छोटे-से शहर में छूट गए थे, वे खुद छायाओं में तबदील हो गए थे। उनकी शक्लें सामने आतीं और गुजर जातीं। बातचीत का कोई सिलसिला ही नहीं रह गया था। और जो इतने बहुत-से लोग यहाँ दिल्ली में थे, वे भी उतने ही अपरिचित और अनपहचाने थे, जितनी कि परछाईं होती हैं। इतने शोर और कोलाहल के बीच भी जैसे सब कुछ बहुत खामोश था। कभी-कभी तो इतनी गहरी खामोशी छा जाती कि उसका मन ऊबने लगता। जी होता कि वह मकान से निकले और सड़कों पर चीखती हुई भागती रहे। सचमुच जब अपनी आवाज़ ही आदमी को नहीं सुनाई देती, तब सिर्फ शोर बाकी रह जाता है। और लाखों-करोड़ों आवाज़ों के भी कोई अर्थ नहीं रह जाते। एक-दूसरे को जाल की बुनाई की तरह काटती हुई आवाज़ें! एक-दूसरे से टकराती हुई आवाज़ें, एक-दूसरे को पीछे छोड़ती हुई आवाज़ें···और इन सब आवाज़ों के ऐन बाद एक गहरा सन्नाटा! बहुत गहरी खामोशी।

रञ्जन कहा करता था—'कविताएँ पढ़ो समीरा! क्योंकि कविताओं के बाद बहुत गहरी खामोशी पीछा करती है। इसके सिवा और कुछ नहीं बचता। लेकिन कविताओं के बाद की खामोशी बहुत खूबसूरत होती है समीरा! और यही तो वह चीज़ है जिसे ज़िन्दगी-भर आदमी खोजता है···

पर यहाँ तो वह खामोशी भरी हुई है—कमरों में, गली में, सड़कों और बाज़ारों में। आदमियों में। चीज़ों में।···अगर इसीकी खोज थी, तो अब शांति क्यों नहीं मिलती?

सात बरस बीत गए, और इन सात बरसों के ऊपर सन्नाटे की पर्त पड़ी हुई है। जिस कोने में बैठकर वह सामनेवाली दीवार देखा

करती है, उसमें अजीब-सी गन्ध भरी रहती है। सीढ़ियों के पास होने की वजह से ऊपरवालों के कचरे का कनस्तर वहीं रहता है और गुसलखाने में से कभी ठंडक और कभी बच्चे साबुन की महक का भभका लगता रहता है। ऊपर से गिरनेवाले पानी के काले पाइप अजगरों की तरह किनारे वाली दीवार पर चिपके हैं। उनमें से जब पानी आता है तब बड़ी गुनगुना आवाज होती है और आँगन की जाली की आँखें डबडबाकर चमकने लगती हैं।

…घर में सन्नाटा इसलिए और भी गहरा हो गया था कि बाबू जी रोज की तरह सुबह-सुबह तैयार हुए थे। उन्होंने कोट-पैंट पहना था, मोज़े-जूते पहने थे और पुरानी टाई लगाकर वह आराम से खाट पर फिर लेट गए थे। ऊपर से उन्होंने कम्बल ओढ़ लिया था।

जब भी सुबह बाबू जी तैयार होते तब घर में रौनक-सी छा जाती। लगता कि पूरा घर किसी काम में लग गया है। कितना अच्छा लगेगा जब बाबू जी अपनी घड़ी देखकर फुर्ती से बाहर जाएँगे और शाम ढले लौटेंगे। थके-हारे, पर उम्मीदों से भरे हुए। यह ठीक है कि घर में कोई खास चीजें नहीं है, पर सब चीजों में जैसे जान पड़ जाएगी। बाबू जी का दिन-भर घर से बाहर रहना ही जैसे जिन्दगी की निशानी है। पर इन सात बरसों में बहुत कम बार ऐसा हुआ है या शायद दिमाग पर यही हावी है कि बाबू जी कहीं नहीं जाते। उनके जाने के लिए कोई जगह नहीं रह गई है। उनका इस तरह घर में रुकना सबको बेकार बना देता है। किसीके लिए कोई काम नहीं रह जाता। किसीकी जिन्दगी का कोई मतलब नहीं रह जाता। दिन और रात का कोई अर्थ नहीं रह जाता। चलना-फिरना, उठना-बैठना, बात करना—सब जैसे बेमानी हो जाता है।

बाबू जी सिर के नीचे दोनों बाहें रखकर चित लेट जाते और टकटकी लगाए छत को देखते रहते। लेटे-लेटे उन्हें नींद आ जाती। एकाध घण्टे बाद वह उठते तो जेब से अपनी एक डायरी निकालकर हिसाब-किताब करते रहते। कभी-कभी डायरी का हिसाब देखकर वह

त खुश होते और माँ को आवाज़ देते—'सुनती हो रम्मी !'
माँ पास जाकर खड़ी हो जातीं। वावू जी उन्हें वताते—'रुपया
ी काफी फैला हुआ है···अगर सब एकसाथ मिल जाए तो कोई
दिक्कत ही न रह जाए। अच्छा, मैं ज़रा चक्कर लगाकर आता हूँ।'
और वह उठकर चले जाते। पर घर में सबको एहसास होता कि वा
जी जब भी आएँगे, कहीं से दस-वीस उधार लेकर ही आएँगे।
घर हर वक्त अनिश्चय में डूबता-उतराता रहता। जैसे वह को
जहाज़ हो जिसका कुतुबनुमा टूट गया हो और दूर-दूर तक सा
उफन रहा हो। असल में अपना शहर छोड़ते वक्त श्यामलाल ने व
यह नहीं सोचा था कि दिल्ली पहुँचने के एक साल के भीतर ही
नौकरी से अलग कर दिया जाएगा। फिर वह इतने कंगाल हो जाएँगे
कि न अपने शहर लौट पाएँगे और न यहाँ ही पैर जमा पाएँगे।
सिन्धी ट्रांसपोर्ट कम्पनी की ब्रांच जब दिल्ली में खुली, तब श्याम-
लाल बुकिंग क्लर्क होकर चले आए थे। चार ट्रक उनके साथ आए थे,
इसलिए एक में वह अपना पूरा कुनवा बटोर लाए थे। दोनों जवान
लड़कियों, बीमार बीवी और अकेले लड़के को आखिर किस आसरे पर
छोड़ आते। सोचा यही था कि रफ्ता-रफ्ता वह दिल्ली ब्रांच के मैनेजर
बन जाएँगे और फिर धीरे-धीरे अपना सिलसिला चालू कर लेंगे।
लाइसेन्स उत्तरप्रदेश सरकार से मिल जाएगा। अपना एक ट्रक भी
चालू हो गया तो वारे-न्यारे हो जाएँगे।
पर वह मुमकिन नहीं हुआ। एक दिन शेड में से सामान की चोरी
हुई और दूसरे दिन श्यामलाल वर्खास्त कर दिए गए। जो हर्जाना कम्पनी
को भरना पड़ा, उसमें उनकी एक महीने की तनख्वाह भी मारी गई। उस
महीने से ही मकान का जो किराया चढ़ना शुरू हुआ, वह अव तक
कुछ न कुछ बकाया है। जब मकान-मालिक आकर गाली-गलौज करत
तब जैसे-तैसे एकाध महीने का किराया चुकाया जाता। पर महीना
ऐसे बीतता था जैसे सर्दी का दिन।
उन्हीं दिनों घर में हरबंस का आना-जाना शुरू हुआ था। हर
की छोटी-सी दुकान थी, जहाँ वह गिलाफों, चादरों, पेटीकोटों, ब्ला

खाना पकाने में लग गई और समीरा ने कह दिया कि उसे अपने वॉल धोने हैं। श्यामलाल झींक-झींककर नमूनों की लाइनें खींचते रहे। आखिर परेशान होकर उन्होंने कैंची और ब्लेड एक तरफ पटक दिया, कागज मोड़-तोड़ कर कूड़े में डाल दिए और चीखने लगे—"मैं सब समझता हूँ! ये लड़कियाँ मुझे चलाती हैं! अब आए वह हरबंस घर में…"

शाम को दुकान बंद करके हरबंस आया तो रम्मी चाय बनाने लगी। उसे चाय बनाते देखकर श्यामलाल खामोश हो गए। जब तारा और समीरा कमरे से निकलकर नहीं आईं, तब उन्होंने खुद ही आवाज दी—"अरे तारा-समीरा! कौन-कौन-से बेल-बूटे आज बनाए हैं, जरा दिखाओ तो!"

रम्मी ने मुसकराकर उनकी बात की सराहना की और एक प्याला उनके आगे और एक हरबंस के सामने रख दिया। हरबंस ने घर का तनाव हल्के से भाँप लिया तो बोला—"बाबू जी…आप हमारे बिजनेस में हिस्सेदार हो जाओ। लगाने के लिए कोई खास रकम नहीं चाहिए। घड़ीवाले ने आधी दूकान दी है उसे सिर्फ तीन हजार देने हैं, इतना इन्तजाम आप कर लीजिए। हमारी-आपकी हिस्सेदारी हो गई।"

"बात तो कायदे की है!" श्यामलाल ने खुश होते हुए कहा था।

"आधे-आधे का रहा! आधा मुनाफा आपका!" हरबंस ने बात आगे बढ़ाई।

"वो तो ठीक है पर…" श्यामलाल ने कहा और रुक गए। हरबंस उनकी दिक्कत समझता था। उसने बहुत सँभालकर कहा—"ठीक समझिए तो तारा को बूटे उतारने के लिए हमारे यहाँ रख दीजिए। हाई क्लास औरतें आती हैं, उनसे तारा बात भी कर सकेगी…और जब आप रुपया दे सकें, तब हिस्सेदार बन जाएँ। मुझे भी एक हाथ की और जरूरत है…"

और दूसरे दिन से तारा चालीस रुपये माहवार पर हरबंस के यहाँ

काम करने लगी थी। हरवंस दुकान बन्द करके उसे घर पहुँचाने आता था। रम्मी और हरवंस का अपना हिसाब चलने लगा था, जिसका कोई एहसास श्यामलाल को नहीं था। श्यामलाल को लगने लगा था कि जैसे घर को सिर्फ चालीस रुपये माहवार की जरूरत थी···इतने से रुपयों की कमी के कारण पूरा घर रुका-रुका-सा लगता था। 'पैटर्न हाउस' में जब से तारा ने जाना शुरू किया, श्यामलाल भी किसी न किसी बहाने वहीं जमे रहते। तारा को यह रखवाली ज्यादा पसंद नहीं थी। हरवंस भी चिढ़ने लगा था। एक रोज़ श्यामलाल ने आकर घोषणा कर दी—"कल से तारा नहीं जाएगी!"

"क्यों?" रम्मी ने अचकचाकर पूछा था।

"कह दिया! बस!" उनके चेहरे की मांसपेशियाँ तड़क रही थीं।

"कोई बात भी हो!"

"वो हरवंस···वह मेरी बेइज्जती करता है। आज दुकान पर उसने सबको चाय के लिए पूछा, मुझसे नहीं। यहाँ रोज़ उसके लिए चाय-शर्बत बनता है!" श्यामलाल ने रम्मी को ताना मारा।

"तो क्या हुआ! कोई घर आए तो हमारा भी कुछ फर्ज होता है!"

"मैं नहीं बर्दाश्त करता···"

"अच्छा ठीक है!" रम्मी झुंझला गई थी।

शाम को जब हरवंस तारा को छोड़ने आया, तब श्यामलाल बैठे हुए मँगनी का अखबार पढ़ रहे थे। तारा के हाथ में एक पैकिट था, जिसे उसने आते ही माँ की गोद में डाल दिया था।

"क्या है?"

"बाबूजी के लिए बनियाइनें।"

"तो उन्हें ही दे दो न···" कहती हुई रम्मी स्वयं उठ गई—"यह लो, तारा तुम्हारे लिए लाई है!"

"रख दो!" श्यामलाल नाराज थे।

रम्मी ने चाय बनाई तो वह कनखियों से देखते रहे। उसने दोनों प्याले लाकर उन्हीं के पास स्टूल पर रख दिए।

"दो का क्या करेंगे?"

"तुम जानो !" रम्मी का स्वर रूखा था ।

"आओ हरवंस ! चाय पी लो !" श्यामलाल ने सूखते गले का थूक निगलते हुए कहा था । जैसे ही उन्होंने चाय का घूंट भरा कि दिल दहल गया । गली में उन्हें वही छाया फिर दिखाई दी जो एक साल पहले आया करती थी । अँधेरे की वजह से वह साफ-साफ तो नहीं देख पाए पर मन शंका से धड़कने लगा ।

बाहर की सीढ़ियों पर जैसे ही क़दमों की आहट हुई, श्यामलाल फौरन उठकर बाहर निकल आए । इससे पहले कि अदालत का चपरासी दस्तक दे, उन्होंने उसे सलाम कर लिया ।

"सम्मन है ! " चपरासी ने कहा—"सुबह आया तब आप मिले नहीं···हमने सोचा सूरज डूबने से पहले तामील कर दें !"

"हाँ···वो···" श्यामलाल का गला बुरी तरह सूख गया, "तो अब क्या करें ?"

"इन्हें ले लो !" चपरासी बोला ।

"कोई रास्ता नहीं है ?"

"अब रास्ता क्या हो सकता है ।···दस का खर्च है···दफ्तर में भी देने पड़ते हैं । दो मेरे हिस्से आएँगे !" चपरासी ने कहा ।

"कितने दिनों के लिए टल जाएँगे ?"

"पांच दिन बाद एक महीने की छुट्टियाँ हैं । इजलास बन्द रहेगी । करीब डेढ़-दो महीने टल जाएँगे···" चपरासी ने समझाया ।

"कल सुबह तकलीफ कर सको···"

"मैं तो तुम्हारी खातिर इस वक्त आ गया । वैसे यह दफ्तर के काम का वक्त तो है नहीं । तुम्हारा कोई नुकसान हो जाए, हमें क्या मिलता है ? सवेरे रपट देनी पड़ेगी कि तामील हुए या नहीं । इस वक्त मुलाकात न होती तो दरवाजे पर चिपका के चला जाता···।" चपरासी लम्बी गाथा सुनाने लगा तो श्यामलाल ने दे-दिवाकर उसे रवाना किया । गवाही में खुद ही पड़ोसियों के दस्तखत भी बना दिए और लिख दिया कि श्यामलाल शहर से बाहर हैं ।

लौटकर कमरे में आए तो उन्हें बड़ी कोफ्त हुई । हरवंस को देख-

कर इस बार वैसी ही बेचैनी हुई। लगा कि जैसे सम्भलवाला घर में भी बैठा हुआ है···उनके अस्तित्व को नकारता हुआ; उसी अकड़ और बाँकपन के साथ···उसी अधिकार और गरूर के साथ।

उनकी चाय ठण्डी होती रही। वह खोए-खोए-से बैठे रहे। अपना प्याला खत्म करके हरबंस वहाँ आ बैठा जहाँ तारा, समीरा और रम्मी बैठी थीं। कमरे में अँधेरा भरा हुआ था। खिड़की से रोशनी का बुरादा झर रहा था। श्यामलाल वहीं बैठे रहे—कमरे को देखते हुए।

···यह कमरा था जो उन्हें सबसे अलग करता था। कीलों पर मैले कपड़े, कोने में ट्रंक और उनके ऊपर तमाम घरेलू सामान। खिड़की पर मरी हुई खाल की तरह झूलता हुआ पर्दा। बल्ब के आस-पास पुरा हुआ जाला···और दीवार पर पं० जवाहरलाल नेहरू की एक तसवीर···

एक क्षण के लिए उन्हें लगा कि जैसे वह डूबते हुए जहाज में घिर गए हैं। चारों तरफ से ऊँची-ऊँची लहरें पछाड़ें खाती हुई बढ़ती आ रही हैं और वह अब कुछ नहीं कर सकते। धीरे-धीरे सब कुछ इन लहरों में डूबता जाएगा और फिर एक झटके में यह जहाज अतल गहराइयों में समा जाएगा···और वह ऊब-ऊबकर मर जाएँगे। चारों तरफ निपट सूनापन छा जाएगा और कुछ भी बाकी नहीं बचेगा।

• घबराहट और बढ़ी तो वह वहीं आँखें मूँदकर लेट गए। कमरा उन्हें जकड़ रहा था। उनके हाथ-पैरों की ताकत खत्म हो रही थी। तभी बाहर से उन लोगों के हँसने की आवाज सुनाई दी···लगा कि अब उनका कोई रिश्ता किसीसे नहीं रह गया है। किसीको उनकी जरूरत नहीं है। अब उनके वश में कुछ नहीं रह गया है। न बाहर की दुनिया और न भीतर की। वह कोई फैसला नहीं ले सकते। धीरे-धीरे उनके हाथों से फैसला ले सकने की ताकत निकलती गई है और अब वह वापस नहीं लाई जा सकती। घर की छोटी से छोटी बात भी उनके अधिकार में नहीं रह गई है। तारा और समीरा बहुत ज्यादा खुदमुख्तार होती जा रही हैं। धीरे-धीरे फैसले लेने की ताकत तारा में समाती जा रही है। घर में किसे क्या जरूरत है और वह

ज़रूरत जायज़ है या नहीं—इसका निर्णय भी उनके पास नहीं रह गया है।

वह सिर्फ एक फालतू चीज़ की तरह रह गए हैं, जिसे फेंका नहीं जा सकता, सिर्फ बर्दाश्त किया जाता है। जिसे सहेजा भी नहीं जाता, सिर्फ होने को महसूस किया जाता है।

और तब उन्होंने करोड़ों-करोड़ों की भीड़ में अपने को खड़ा पाया-भीड़, जो सिर्फ भीड़ है। जिसमें कोई किसीको नहीं पहचानता। वे सिर्फ एक-दूसरे को ऐसी नज़रों से देखते हैं, जैसे पूछ रहे हों, 'तुम्हारे होने का मतलब ? क्यों···किसलिए ?'

छटपटाकर वह बाहर निकल आए। वहाँ रम्मी बैठी थी। तारा, समीरा और बीरन—कोई नहीं था।

"सब कहाँ गए ?"

"ज़रा बाज़ार तक का चक्कर लगाने···" रम्मी ने कहा।

"किसके साथ···"

"हरबंस ले गया है···"

"तुम भी चली जातीं !" उनके रुख में टेढ़ापन उभर आया था।

"तो क्या हो गया···तारा अब अपना भला-बुरा समझने लगी है···दिन-भर काम करके लौटती है तो उसे कुछ मनबहलाव भी चाहिए !" रम्मी ने भी उसी टेढ़ेपन से कह दिया था।

वह फिर कमरे में घुस गए। वहीं से बोले—"मैं सब ठीक करके रहूँगा !"

"कर चुके···" उन्हें फुसफुसाहट सुनाई दी थी।

उधर से उचटकर उनका मन बीरन पर जाकर जैसे अटक गया था। बीरन किसी लायक हो जाए तो यह बिखरता हुआ कंगाल साम्राज्य बचाया जा सकता है···यह डूबता हुआ जहाज़ उबारा जा सकता है।···

श्यामलाल की सारी आशाएँ बीरन पर ही टिकी हुई थीं। जब भी वे बाहर सड़क पर आते···स्कूलों को जाते हुए बच्चों को देखते रह जाते। उन्हें पता लगता कि उन्हींकी तरह हर पिता की सारी

उम्मीदें इन स्कूली बच्चों पर ही टिकी हुई हैं, जैसे इन्हींके बड़े होने का इन्तजार है। जिस दिन बीरन इंटर और फिर बी० ए० कर लेगा—सब कुछ बदल जाएगा। बीरन घर को सँभाल लेगा और वे इस बेबसी की जिन्दगी से उबर जाएंगे।

वे खड़े-खड़े देर-देर तक स्कूली बच्चों को जाते हुए देखते रहते—शैतान और शरारती बच्चे…हाथों या बस्तों में किताबें लिए वक्त से स्कूल पहुँचने के लिए भागते हुए। अपने-अपने स्कूल की वर्दी में। और तब एकाएक उन्हें लगता कि उनका बीरन कितना समझदार है। कम से कम चार वर्दियां तो बच्चे के पास होनी ही चाहिए, पर उसके पास सिर्फ दो ही है, और वे भी पुरानी। पर उसने कभी परेशान नहीं किया। वह जानता है कि बाबूजी दिक्कतों में है और घर बड़ी मुश्किल से चल रहा है।

श्यामलाल उसमें आ गई इतनी समझदारी देखते तो चुप रह जाते पर वे भी बहुत मजबूर और बेबस थे। चाहने पर भी बीरन के लिए कुछ और कर सकना उनकी शक्ति के बाहर था।

एक थी नमता

वीरन कालेज चला गया था। समीरा अब भी बैठी हुई सामनेवाली दीवार की परछाइयाँ देख रही थी। सरदार अपने बाल धोकर आया था। वह सिर झुकाए बालों को आगे किए फटकार रहा था। जब वह बालों पर हाथ मारता तब परछाईं में लगता कि जैसे अपने थप्पड़ मार रहा है। समीरा को यह देखने में बड़ा मजा आ रहा था। ···सन्नाटा उसी तरह छाया हुआ था। श्यामलाल सूट-बूट पहने सो रहे थे। तारा को हरबंस आकर ले गया था। एक क्षण को समीरा को बड़ा अटपटा लगा।

उसने एक बार अपनी तरफ देखा—गंदे टूटे हुए नाखून···फटी हुई एड़ियाँ और बाँहों पर अजीब-सा रूखापन···तारा के बक्से में अब ताला बन्द रहने लगा था···उसके कपड़े सबसे अलग टँगते थे। उसकी चप्पलें अल्मारी में रहती थीं और घर में जब उसे कोई काम करना होता था तब सब बेकार हो जाते थे। उसके नहाने के लिए सबको इन्तजार करना पड़ता था···उसके तैयार होने के वक्त कोई और तैयार नहीं होता था। उसका हर काम सबसे जरूरी हो गया था। सब चीजें उसके पास इकट्ठी हो गई थीं। कलम की भी जरूरत पड़ती तो तारा से माँगना पड़ता। वक्त पूछना होता तो उसीसे मालूम होता। दुनिया-जहान की बातें चलतीं, तो उसकी बात सबसे ज्यादा सही मानी जाती।

वीरन किसी भी बात में दखल नहीं देता था। उसे जैसे किसी से कुछ लेना-देना नहीं था। कालेज से आता तो एक प्याला चाय पीकर कहीं चला जाता। लौटता तो कापी-किताबें साथ लाता और बगैर किसी पचड़े में पड़े, वह पढ़ता रहता था।

उसे हमेशा अपने बाबूजी की मायूसी और बेबसी सताती रहती। वह घर की तरफ देखता तो बरबस मन भर जाता। उसे पता था कि माँ और बाबूजी उसे अपना पेट काट-काट कर पढ़ा रहे थे। वह भी इसी कोशिश में रहता कि उसके कारण घर में कोई परेशानी न हो जाए।

शाम को ही वह अपनी ड्रेस धोकर सूखने के लिए डाल देता। जूतों पर खड़िया फेर लेता। सुबह किसीके भी उठने से पहले वह जाग जाता और अपने सूखे कपड़ों पर इस्त्री कर लेता। सही बात यह थी कि वीरन का भार और उपस्थिति घर में मालूम ही नहीं पड़ती थी।

पर सब लोग वीरन का ख्याल बहुत रखते थे। सबकी आँखों में एक खामोश सपना पल रहा था—वीरन के भविष्य का सपना। कि एक दिन वह कुछ करने लायक हो जाएगा और तब यह घर सुधर जाएगा। सब कठिनाइयाँ और मुश्किलें हल हो जाएंगी।

जब से वीरन की बड़ी जीजी तारा काम करने लगी थी, तब से वह कभी-कभी बहुत सकुचाकर अपनी बात तारा जीजी से कह देता था। अगर उसे कोई जरूरत पड़ती तो वह भी सीधे तारा से कहता—"जिज्जी, मुझे कम्पास चाहिए।"

"दुकान पर आ जाना...मंगवा दूंगी।"

और जब एक दिन वीरन ने आकर बताया था कि नौ-सेना में उसे चुन लिया गया है तब घर में खुशी की लहर दौड़ गई थी।

"तूने कब अर्जी दी ?" श्यामलाल ने एकाएक पूछा था।

"कॉलेज में भर्ती का नोटिस आया था...तभी दे दी थी। पिछले इतवार इण्टरव्यू और टेस्ट था। पास हो गया..."वीरन ने बहुत गर्व से बताया था।

"तूने कभी बताया नहीं..." श्यामलाल की आवाज में प्यार भरा हुआ था।

"सोचा···जब कुछ हो जाए तब बताऊँगा।"

तारा शाम को आई और उसने सुना तो बहुत खुश हुई।

"कितनी तनख्वाह है?" माँ ने उसकी पीठ पर हाथ फेरते हुए पूछा था।

"अम्मा! तनख्वाह की मत पूछो···खाना-पीना···कपड़ा-सपड़ा, रहना-वहना सब फ्री है। तनख्वाह तो पूरी तुम्हारे लिए है।" बीरन ने भर्ती होने का हुकुमनामा श्यामलाल को थमा दिया।

"दफ्तर कहाँ पर है?" माँ ने पूछा था।

"देखिए कहाँ भेजते हैं···बम्बई या···"

"इतनी दूर···मैं समझी थी यहीं दिल्ली में नौकरी लगी है···"

"यहाँ समुद्र कहाँ है?" बीरन बोला था।

"समुद्र···" श्यामलाल बुदबुदाकर रह गए थे।

"तो तू समुद्र पर रहेगा···जहाज़ चलाएगा!" माँ ने जानना चाहा था—"समुद्र तो बहुत दूर है। छुट्टी मिला करेगी?"

"हाँ···हाँ···" बीरन सब बातें सबको समझाता रहा था। नेवी की नौकरी की बातें वह बढ़ा-चढ़ा के करता रहा था। उसकी आँखों में पूरी दुनिया तैर रही थी।···

रम्मी ने उसी वक्त समीरा से कहकर दूर के रिश्तेदारों को भी खत लिखवा दिए थे कि बीरन जहाज़ पर बड़ा अफसर हो गया है। थोड़े दिनों में उसे विलायत जाना है। शायद हम लोग भी कुछ दिनों बाद दिल्ली छोड़कर बम्बई चले जाएँ।

दो हफ्ते बाद बीरन चला गया था। घर बहुत खाली-खाली-सा लगता था, पर उसके खतों से जैसे सब सधा हुआ था। हर महीने वह पिताजी के नाम मनीआर्डर करता और मनीआर्डर पाते ही श्यामलाल आठ-दस दिनों के लिए घर में फैसले लेने लगते। पैसे खत्म होते ही फैसले लेने का हक अपने आप तारा के पास चला जाता। या एकाध बातें हरबंस तय कर देता···तब, जब रम्मी को वह दस-बीस रुपये चुपके से

उधार देता।

समीरा को पढ़ाई शुरू करनी चाहिए, यह फैसला हरवंस ने ही किया था, और वह कालेज पढ़ने जाने लगी थी।

लेकिन पूरे घर पर बीरन का व्यक्तित्व छा गया था। दूर समुद्र पार से उसके खत आते, तो श्यामलाल को बड़ा सहारा मिलता। जब मनीआर्डर भी आ जाता तब शाम को तारा, समीरा और हरवंस के लिए यह कुछ मिठाई घर में ले आते।

बीरन के खतों को वह तब पढ़ते, जब सब लोगों को जमा कर लेते'''जहाज ऐसे डगमगाता है जैसे भूचाल आया हो। शुरू-शुरू में बड़ी तकलीफ होती थी। अब आदत पड़ गई है। देशों और शहरों से दूर हमारी यह निराली दुनिया है'''ट्रेनिंग बहुत सख्त है, पर आराम भी बहुत है। कल हमारा जहाज़ स्वेज पार करेगा। आज पार करने की इजाज़त नहीं मिली है। लेकिन हम उतरकर कहीं नहीं जा सकते। बन्दरगाहों पर बाज़ार अच्छे नहीं हैं'''

पढ़ते-पढ़ते श्यामलाल को लगता जैसे उनका डूबता हुआ जहाज़ सहसा सतह पर आ गया है। उसे किसीने सँभाल लिया है और अब लहरों के थपेड़े कुछ नहीं कर सकते'''

जब से बीरन समुद्र पर चला गया था, तब से सामनेवाले घर की नमता किसी न किसी बहाने से घर में आने लगी। पहले तो वह तारा से एक गिलाफ पर बूटा उतरवाने आई थी, पर बाद में वह रम्मी और समीरा के पास भी आने-जाने लगी थी। जब भी वह अपनी खिड़की से श्यामलाल के दरवाजे में कोई चिट्ठी पड़ी देखती, तब निकल आती और चिट्ठी उठाकर उनके घर में दे जाती, कहती—"यह वहाँ गली में पड़ी हुई थी।"

और किसी न किसी बहाने वह चिट्ठी खुलने और पढ़े जाने तक वहीं अटकी रहती।

"अम्मा! भैया ने लिखा है कि तीन महीने बाद शायद छुट्टी मिले। डायमण्ड हार्बर पहुँचने की तारीख 30 अगस्त है। अगर बीच में कोई

परेशानी न हुई तो 2 तारीख तक दिल्ली पहुँच जाऊँगा। तारा जिज्जी और समीरा जिज्जी के लिए कुछ चीजें ली हैं। तुम्हारे लिए क्या लाऊँ, यह समझ में नहीं आता।"

नमता ध्यान से सुनती रही। समीरा ने जब उसे देखा तब एकदम बोली—"वीरेन्द्र की चिट्ठी है शायद···"

"हाँ!" समीरा आगे पढ़ने लगी। नमता एक मिनट दरवाज़े के पास ठिठककर अपने घर लौट गई।

ज्यादातर यही होता कि बीरन की चिट्ठी नमता उठाकर लाती। सुबह जब डाक आने का वक्त होता तब वह श्यामलाल के दरवाज़े पर आँखें टिकाए रहती। जैसे किसी आने वाले का इन्तज़ार हो। धीरे-धीरे समीरा और उसकी दोस्ती भी हो गई थी और समीरा भाँपने लगी थी कि वह बीरन के बारे में ज्यादा से ज्यादा जानना चाहती है। उसके हर पल का ब्योरा रखना चाहती है, पर नमता ने कभी कुछ नहीं कहा। कभी समीरा ने जान-बूझकर कुरेदना भी चाहा तो वह बात टाल गई। समीरा हमेशा असमंजस में ही पड़ी रहती···उसने कभी बीरन और नमता को उस समय भी साथ नहीं देखा—जब वह जहाज़ पर नहीं गया था। नमता के व्यवहार में ज़रा भी उतावलापन नहीं था। जब से समीरा कुछ सूंघने लगी थी, तब से वह आया हुआ खत भी उठाकर नहीं लाती थी और न यही कहती थी—'गली में पड़ा हुआ था।'

वह सिर्फ डाकिए के आने की राह अपनी खिड़की से देखती रहती थी और जब खत श्यामलाल के दरवाज़े में आ जाता था तब खिड़की बन्द करके अन्दर चली जाती थी।

एक बार मनीआर्डर वाला तीन बार लौट गया। श्यामलाल घर नहीं मिले। उसने किसी और को देने से इनकार कर दिया। उन तीन दिनों घर को बड़ी तकलीफ हुई और तब से श्यामलाल ने वीरन को लिख दिया था कि मनीआर्डर वह अपनी माँ के नाम भेजा करे ताकि उनकी गैरहाजिरी में भी मिल जाया करे।

जब से वीरन के खत और मनीआर्डर नियमित आने लगे थे, तब से श्यामलाल भी धंधे में जुट गए थे। वह अखबार खरीदने लगे थे। सुबह उठते ही वह 'खरीद-फरोख्त' का कालम देखते और चीज़ें बेचनेवालों के यहाँ अलस्सुबह पहुँच जाते। वहाँ जाकर माल देखते, सौदा पटाते और बात जँच जाती तो वह फौरन चैक काटकर पैसा अदा करते और वहाँ से माल उठाने के बजाय, वहीं उसके मालिक बनकर बैठ जाते। अपने बाद में आनेवाले खरीदारों से वह मालिक की तरह बात करते और वही तीस-चालीस या पचास का मुनाफा नकद लेकर चले आते। दूसरे दिन वह फिर 'खरीद-फरोख्त' का कालम देखते।

एक बार टुकड़ा साइकिलों में उनके पैसे उलझ गए। गलती उन्होंने यह की कि माल तिलकनगर में खरीद लिया। कबाड़ी, जो उस माल को खरीदने में रुचि रखते, वे बहुत दूर पड़ गए थे। उतनी दूर चलकर कोई नहीं पहुँचा। जब सुबह से इन्तजार करते-करते दिन का एक बज गया, तब मुसीबत खड़ी हो गई। पुराना मालिक माल उठाकर ले जाने के लिए कह रहा था और श्यामलाल को पता था कि बैंक में उतने पैसे भी नहीं हैं, जितने का चैक उन्होंने काटा है। पुराना मालिक जल्दी मचा रहा था कि चैक कैश करवाओ और

अपना माल शाम तक उठवा लो।

जैसे-तैसे उन्होंने जान छुड़ाई थी। चैक का पैसा लाने के बहाने वह चले तो फिर वहाँ वापस नहीं पहुंचे। उस दिन के बाद से उन्होंने तिलकनगर, राजोरी गार्डन्स, रमेशनगर, मोतीनगर की तरफ बिज़नेस करना छोड़ दिया था। कबाड़ का सामान कहीं जामा मस्जिद या सदर के आस-पास होता तो वह पैसा लगाते, नहीं तो चुपचाप बैठे रहते। इन दिक्कतों के बावजूद उनका यह धंधा खासा चल रहा था और घर में कई चीजें मुफ्त भी आ गई थीं। आयरन, ड्रेसिंग टेबिल, स्टोव, थरमस, पुराना कालीन और सजावट के लिए दीवालगीरियाँ वगैरह···सर्दियों के लिए उन्होंने एक ओवरकोट का इन्तजाम भी कर लिया था। मौका लगते ही सिलाई मशीन और पंखा लाने की बात वह सोच रहे थे।

वीरन के मनीआर्डर और खरीद-फरोख्त के अपने धंधे के सहारे दिन-ब-दिन जिन्दगी पर उनकी पकड़ मजबूत होती जा रही थी। और उन्हें लगने लगा था कि अब पुरानी रफ्तार पर आने में बहुत देर नहीं है। वीरन ने एकाएक सबको उबार लिया था। घर ढर्रे पर आ गया था। और घर ढर्रे पर आते ही एक दिन उन्होंने तारा को झाड़ दिया था—"अब यह सब इस घर में नहीं चलेगा। सात बजे तक बाहर रहने की जरूरत नहीं है। मैं समझता था कि तुम खुद सोचोगी······"

"पर बाबू जी, सात बजे तो दुकानें बन्द होती हैं। पहले कैसे आ सकती हूं?" तारा बोली थी।

"तो छोड़ दो काम। हमें नहीं जरूरत है। मैं मर नहीं गया हूँ, आखिर सबको पालता ही रहा हूं। वीरन को इस लायक कोई बाहर वाला नहीं कर गया था! समझीं!"

"पर इतने से चलेगा कैसे?" तारा ने कहा।

"यह मेरे सोचने की बात है। तुम जो चालीस रुपल्ली लाती हो, उससे घर नहीं चलता! समझीं! जो मैं तुमसे कहता हूँ वह करो।"

"तो सोच-समझकर तय किया करो कोई बात", रम्मी बीच में

आ पड़ी थी, "कल मनीआर्डर आया है न इसीलिए उछल रहे हो। आठ दिन बाद घर का खर्चा कहाँ से चलेगा। समीरा की फीस कहाँ से आएगी···"

"मैं करूँगा इन्तजाम।"

"जिस दिन इन्तजाम करके एक महीने की पेशगी मेरी हथेली पर धर दोगे, उसी दिन से तारा बाहर नहीं जाएगी," रम्मी ने गुस्से से कहा, "बगैर सोचे-समझे हुकुम चलाते रहते हो। तुम्हें क्या, तकलीफ तो हमें उठानी पड़ती है। तारा चार पैसे नहीं लाएगी तो हो लिया··········"

श्यामलाल गहरी नजरों से रम्मी को देखते रहे। उसमें कुछ बदला हुआ था, पर क्या—यह नहीं पहचान पाए। बस रम्मी उन्हें पहले से कम उम्र की लग रही थी। उसके बदन में भी चुस्ती थी। श्यामलाल उसे देखते रह गए। उन्हें लगा कि रम्मी को जवान होते उन्होंने देखा ही नहीं। यह भी नहीं देखा कि उसके बदन पर नई 'ब्रा' आ गई है, बालों में काला रंग आ गया है और ओठों में अजीब-सी लाली! आँख से इशारा करके उन्होंने रम्मी को कमरे में बुलाया। ठुनकती हुई वह भीतर पहुँची।

श्यामलाल पुराना बक्सा खोलने लगे।

"उसमें से क्या निकालना है?" रम्मी ने पूछा।

"कुछ नहीं······"

"बताओ न······"

उन्होंने बक्सा बन्द कर दिया और रम्मी को दोनों बाँहों में भर लिया—"बड़ी अच्छी लग रही हो!" रम्मी उसकी बाँहों में जैसे पिघल गई। वे बोले थे—"ऐसी लग रही हो जैसी पहले दिन लगी थी।" आखिर शरमाकर और अपने कपड़े संभालते हुए रम्मी जब बाहर चली गई तो उन्होंने फिर बक्से को खोला और कुछ खोजते रहे। उन्होंने शादी वाली तस्वीर निकाली थी।

तीसरे दिन समीरा ने चादर बदलने को दरी उठाई तो सिरहाने से

वही तस्वीर निकल आई, जो बाबूजी और अम्मा ने शादी के ऐन बाद खिंचवाई थी।

"यह कहाँ से आ गई ?" समीरा भीतर से ही चीखी।

रम्मी ने चतुराई से बात टाल दी, "तारा ने पुराने बक्से से कुछ सामान निकाला था···तभी निकल आई होगी," और उन्होंने वह तस्वीर लेकर फिर बक्से में डाल दी।

यही वह बक्सा था, जिसमें सब कुछ पुराना बन्द था। घर के बुज़ुर्गों की यादगारें—नकली दाँत, घड़ी की चेन, सच्चे गोटे की किनारियाँ और पल्ले। चाँदी के खरके और घिसे हुए बिछुए। माथे की गटापारचे की सुहाग बिंदियाँ और हिसाब-किताब की पुरानी कापियाँ। कुछ पुराने सिक्के और पीले पड़े खस्ता खत। कुछ कौड़ियाँ और लाल-लाल रत्तियाँ। दवाओं के नुस्खे और किसी धर्मगुरु की दी हुई रुद्राक्ष की माला। गुटका रामायण और वंशवृक्ष के नक्शे। कुछ बहुत पुरानी तस्वीरें और विक्टोरिया के तीन रुपये। जो भी पुराना होकर बीतता जाता था, इसी सन्दूक में पहुँचता जाता था। सन्दूक जब भी खुलता—कमरे में गर्म-गर्म भभक-सी भर जाती और वह महक काफी-काफी देर तक बसी रहती। श्यामलाल कभी-कभी इस बक्से को खोलते तो एक-एक चीज को मूर्तियों की तरह आदर से उठाते। उन्हें उलट-पलटकर फिर रख देते और उस शाम पुराने वैभव की दास्तानें सुनाते रहते। दोनों लड़कियाँ और उनकी माँ बड़े चाव से वह सब सुनतीं, जो बीत गया था। जिसे उन्होंने नहीं देखा था। पुराने घर की शक्ल सभी के सामने उभरने लगती···और बुज़ुर्गों का वह ज़माना आँखों के सामने तैर आता, जब लोग बड़े आराम और बेफिक्री से जिंदगी जी रहे थे।

घर-परिवार की मर्यादा के तकाजों की बात जब निकल आती तब श्यामलाल बड़े फख्र से कहते—"हमारी दादी ने तो पड़ोस के आदमियों की शक्ल तक नहीं देखी थी···देहरी के बाहर पैर नहीं रखा था। देवी-पूजा के लिए जब हम लोग जाया करते थे तब इक्के में पर्दे बंधते थे और देवी-मंदिर में हम सब लड़के दोनों तरफ चादरें

तामकर खड़े होते थे। तब घर की औरतें दर्शन के लिए जाया करती थीं। मजाल क्या कि चादर सिर से सरक जाए!…एक बार की बात है कि बड़ी दादी के सिर से चादर उतर गई थी तो बड़े वब्बा ने उनसे बोलना बन्द कर दिया था। जब तक बड़ी दादी जिन्दा रहीं, उन्होंने बात नहीं की। मरते वक्त वह देखने आए थे…और जब उन्होंने गंगाजल दिया था तब बड़ी दादी के प्राण निकले थे…"

रम्परा खत्म हो गई थी !

रात काफी उतर आई थी। सन्नाटा बहुत गहरा हो गया था। समीरा और श्यामलाल सो गए थे, पर रम्मी की आँखों में आज नींद नहीं थी। तारा ने बहुत सकुचाते हुए तब माँ से कहा था कि वह हरबंस से शादी करना चाहती है।

"सो गए ?" बहुत धीरे से रम्मी ने श्यामलाल से पूछा था।

"नहीं...!" उतने ही धीरे से श्यामलाल ने जवाब दिया था।

वह करवट बदलकर सोचती रही थी। फिर उसने बहुत धीरे से श्यामलाल को बता दिया था कि तारा हरबंस से शादी करने की बात कहती है। तरह-तरह के ख्याल तब रम्मी के दिमाग में आते रहे थे। रह-रहकर उसका दिल घबराने लगता था। नींद बिलकुल उचट गई थी। श्यामलाल भी खाट पर पड़े-पड़े कसमसा रहे थे। दोनों की हिम्मत बात करने की नहीं पड़ रही थी। दीवारें जैसे बहुत नज़दीक खिसकती आ रही थीं, और वे गहरे अंधे कुएं में नीचे उतरते जा रहे थे।

श्यामलाल ने धीरे से रम्मी की बाँह पर हाथ रखा। उसने करवट बदलकर मुँह उनकी ओर कर लिया, पर बात किसीके मुँह से नहीं निकली। अँधेरे में वे दोनों कई क्षणों तक एक-दूसरे की खुली आँखों को महसूस करते रहे।

"नींद नहीं आ रही..." श्यामलाल ने आखिर धीरे से कहा था।

"सिर में तेल लगा दूं।" रम्मी ने पूछा था।

"उससे क्या होगा !"

"मेरी तबियत भी घबरा रही है !"

दोनों फिर चुप हो गए थे। एक दूसरे से बिना बात किए वे धुंधली दीवारों और आसमान को देखते रहे थे।

आत्मबोध

सुबह तारा बहुत जल्दी खाट से उठ गई और कमरे में चटाई बिछाकर सोती रही थी। वह सुबह बहुत सूनी थी। कोई किसी से जरूरत के अलावा बात नहीं कर रहा था। समीरा को जब यह खामोशी खलने लगी तब यह अपने उसी कोने में आकर बैठ गई थी जहां बीरन के जाने के बाद वह आकर बैठने लगी थी, और आज भी उसी तरह सुबह के सूरज की वजह से सामने वाली दीवार पर परछाइयां तैर रही थीं। पहले कमरे वाला आदमी शेव कर रहा था'''उसका रेज़र आकार में बहुत बड़ा दिखाई दे रहा था और नाक दीवार की सलवटों पर टेढ़ी होकर बहुत लम्बी हो गई थी।

श्यामलाल बगैर किसी काम के सुबह से ही घर से निकल गए थे। आखिर रम्मी ने समीरा से तारा को उठवाया था और तारा थकी-थकी-सी मुंह धोने चली गई थी।

लौटकर आई तो रम्मी ने चाय का प्याला और एक पराठा उसके सामने चुपचाप रख दिया। तारा ने नाश्ता किया और कपड़े बदलकर जाने लगी तो इतना ही बोली थी—"अच्छा अम्मा, मैं जा रही हूं!"

"सुन'''" रम्मी ने आवाज़ दी।

तारा सामने आकर खड़ी हुई तो उसने बहुत गहरी नजरों से उसे देखा। पर तारा की आंखों में सिर्फ थकान थी, भय या आशंका नहीं।

"तेरी तबियत ठीक नहीं लग रही है!" रम्मी और कुछ नहीं पूछ पाई थी।

"क्यों, ठीक है।"

"लगती तो नहीं, ठीक न हो तो मत जा!"

"नहीं, चली जाऊंगी।"

"शाम को मंदिर चलेगी ?" रम्मी ने सशंक दृष्टि से देखकर पूछा—"थोड़ा जल्दी लौट आ, तो ठीक रहेगा !"

"अच्छा !" कहकर तारा चली गई थी।

रम्मी का दिल और ज्यादा घबराने लगा था। उसकी समझ में कुछ भी नहीं आ रहा था। समीरा कालेज जाने लगी तो उसने डाँटकर कहा था—"सीधी घर आना···ढाई बजे छुट्टी होती है, साढ़े तीन तक घर पहुँचो। रोज-रोज मैं नहीं सुनूँगी कि बस नहीं मिली !"

"तो मैंने क्या किया है जो मुझ पर बिगड़ रही हो ?" समीरा ने तुनककर कहा—"यह खूब रही···"

"क्या कहा ?" रम्मी क्रोध में उबल रही थी—"ज्यादा ज़बान चलाने की जरूरत नहीं है। जो कहा है, उसे खुले कान सुन लो। अगर रोज़ छः बजते हैं तो कोई जरूरत नहीं कालिज-फालिज जाने की !···"

पर समीरा पर माँ की बात का जैसे कोई असर नहीं हुआ था वह कमरे में तैयार होते हुए मौज में गीत गुनगुनाती रही थी।

"क्या बात है··· [illegible] ये तराने बहुत फूट रहे हैं !" रम्मी से जब बर्दाश्त नहीं हु[illegible] कमरे में जा[illegible] हा। समीरा बाल सँवार रही थी। [illegible] र वह [illegible] हो गई।

तारा को दरवाज़े पर ही छोड़कर चला गया। तारा भीतर आई तो माँ बैठी सगनौती उठा रही थी। समीरा नमता के घर गई हुई थी और श्यामलाल सुबह से वापस नहीं आए थे।

"पता नहीं ये कहाँ चले गए···" रम्मी ने कहा।

"कितनी देर हुई ?" तारा ने पूछा।

"तुम्हारे सामने ही सबेरे चले गए थे···"

"आ आएँगे···कहीं काम लग गया होगा।"

"हरबंस नहीं आया ?" रम्मी ने तारा को गौर से देखते हुए पूछा था।

"उन्हें जरूरी काम था।" तारा कहकर बात टाल गई।

बहुत रात गए श्यामलाल आए और कपड़े उतारकर लेट गए।

"खाना ले आऊँ ?" रम्मी ने पूछा।

"नहीं !" उनकी आवाज सख्त थी।

"कुछ खा लो···" रम्मी ने डरते-डरते कहा था।

"एक बार कह तो दिया !" श्यामलाल ने और ज्यादा सख्त आवाज में, पर धीरे से कहा। वह छटपटा रहे थे। अब तो इस घर में यह भी मुमकिन नहीं था कि वह चीख सकते। अपने पुराने शहर का घर होता तो उन्होंने आसमान सिर पर उठा लिया होता। पर अब वह कुछ भी कर सकने की स्थिति में नहीं थे। पता नहीं इन पिछले दो-तीन बरसों में चीज़ें अपने-आप कैसे बदलती गई थीं। लड़कियाँ बहुत अपनी थी, पर न जाने क्यों दूरी बढ़ गई थी। आपस में कहीं कुछ धीरे से पिघल कर बह गया था, जिसे वह अब महसूस कर रहे थे। चूंकि रिश्तों को नया नाम नहीं दिया जा सकता; बाप-बेटी या माँ-बेटी अब भी बाप-बेटी और माँ-बेटी ही कहे जाएँगे, पर उनके बीच से कोई चीज अनजाने ही खो गई थी। हकों में कहीं बड़ा फर्क आ गया था। लड़कियाँ लड़कियाँ ही थी पर वे न तो 'पराई सम्पत्ति' रह गई थी और न 'घर का बासन'। पता नहीं उनमें कहाँ क्या उपज आया था, जो पहले नहीं था।

आँचल से झाँकती आँखें

फिर एक दिन शाम तारा हरवंस के साथ ही लौटी। वे दोनों हमेशा की तरह ही घर में दाखिल हुए। हरवंस को देखकर पहली बार रम्मी को गुस्सा आया। उसे देखते ही वह तमाम उन बातों के लिए मन से तैयार हो गई थी, जो वह कह सकता था। इससे पहले कि वह हरवंस से बात करती, तारा को बुलाकर वह भीतर ले गई।

"यह तुझे क्यों छोड़ने आया है?" रम्मी हरवंस से चिढ़ी हुई थी।

"उन्हींसे पूछ लो।" तारा ने ज़रा तेजी से कहा था।

"उससे मैं क्या पूछूंगी?" रम्मी ने उसके कन्धे पर हाथ रखते हुए कहा। तारा आँखें फाड़े माँ को देखती रह गई।

तभी हरवंस भीतर आ गया। रम्मी एकबारगी सकपका गई। हरवंस गहरी नज़रों से उन्हें देख रहा था। एकाएक वातावरण बहुत कसैला हो गया था।

हरवंस को सामने खड़ा देखकर रम्मी अपना दुख नहीं सँभाल पाई। और कुछ समझ में नहीं आया तो वह बोल पड़ी—"यह दुश्मनी तुमने काहे को निवाही हरवंस? हम लोगों ने तुम्हारा क्या बिगाड़ा है?"

"कैसी बात कर रही हैं आप?" हरवंस ने आँखें टेढ़ी की थीं।

"लेकिन हम करें क्या?" रम्मी ने हरवंस से सवाल किया था।

"आपको क्या करना है? करना तो मुझे है।" हरवंस के शब्द बहुत साफ थे, "लगन निकलवा लीजिए..."

रम्मी आँखें फाड़े उसे देखती रह गई। हरवंस की आवाज़ में ज़रा भी लरजिश नहीं थी।

"यह ठीक है कि मुझसे ज्यादती···अगर समझिए तो···हो गई है···पर मुझे तो आपसे कहना ही पड़ता।" हरबंस कह रहा था और वह सुनती जा रही थी—"आप लोगों को कोई एतराज तो नहीं है? तारा को नहीं है। अब आप पर है, मुझे आप व बाबू जी का आशीर्वाद चाहिए, अब मैं भी आपके लड़के की तरह हो हूँ।"

हरबंस बोल रहा था पर रम्मी को अपने कानों पर यकीन नहीं हो रहा था। कहीं ऐसा भी हो सकता है···कहीं यह भी कोई फरेब तो नहीं है···पर हरबंस किस स्वार्थ के लिए ऐसा करेगा? सिवा लड़की के और है ही क्या उनके पास···

"बेटा! हम लोग बहुत गरीब आदमी हैं!" रम्मी सोचकर बोली थी।

"अच्छा! यह हमें पता नहीं था माँ जी।" हरबंस के होंठों पर हल्की-सी मुस्कराहट थी और लहजे में मजाक का पुट।

श्यामलाल जब लौटे तब सब लोग बैठे चाय पी रहे थे और हँसी-मजाक में मशगूल थे। तारा सिर पर आँचल डाले चुप बैठी थी। यह दृश्य देखते ही श्यामलाल की आँखों में खून उतर आया। अपने आपको सँभाले हुए वह सीधे अन्दर चले गए। रम्मी उनके गुस्से का कारण समझ गई थी। वह दोनों लड़कियों और हरबंस की तरफ बारी-बारी से देखकर बोली—"आज तुम्हीं लोग इन्हें बुलाकर लाओ। बहुत नाराज हैं!"

हरबंस उन्हें बुलाने के लिए भीतर घुस गया और वे तीनों भीतर कान लगाए बैठी रहीं। लगभग आधा घण्टा हरबंस और श्यामलाल में बातचीत होती रही और जब भीतर से श्यामलाल का ठहाका सुनाई दिया तब तीनों की जान में जान आ गई थी।

दोपहर को जब डाकिये ने श्यामलाल के दरवाजे में खत डाला तब

नमता अपनी खिड़की से देख रही थी। जब बहुत देर तक कोई खत उठाने नहीं आया तब उससे नहीं रहा गया। आखिर वह निकली और खत उठाकर समीरा को देने चली आई, बोली—"यह गली में पड़ा हुआ था।"

"तुम हर वक्त गली पर नज़र रखती हो!" समीरा ने खत खोलते हुए कहा था। फिर खत पढ़ने लगी थी—"अम्मा, भैया ने लिखा है कि वह अभी छुट्टी पर नहीं आ पाएगा।···"

"क्यों?" माँ ने पूछा था, "क्या हुआ? क्यों नहीं आ पाएगा?"

"खत पढ़े देती हूँ। 'पूज्य अम्मा और बाबू जी, सादर चरणस्पर्श! आगे हाल यह है कि मैं अभी घर नहीं पहुँच पाऊँगा। हमारा प्रोग्राम बदल गया है। हुकुम मिला था कि हमारे जहाज को मैत्री-यात्रा पर न्यूजीलैण्ड जाना है। पिछले इतवार की दोपहर हमारा जहाज न्यूजीलैण्ड पहुँच गया था। दो दिन लगातार जहाज पर ही जशन पार्टियाँ होती रहीं। यहीं पार्टी में मेरी मुलाकात एक टीम के लीडर से हुई। वैज्ञानिकों और नाविकों की एक टीम दक्षिणी ध्रुव जा रही है। अगर मुझे अपने कमाण्डर से छुट्टी और इजाजत मिल गई और उस टीम के लीडर ने मुझे भी साथ शामिल करना मंजूर कर लिया तो अगले हफ्ते दक्षिणी ध्रुव की यात्रा पर चला जाऊँगा। वैज्ञानिकों की यह टीम यहाँ खाने-पीने की चीजों, कुछ यंत्रों और कुछ साथियों की तलाश में है। जैसे ही यह सारा सामान जमा हो जाएगा, वैसे ही वे लोग चल पड़ेंगे। सबसे बड़ी अड़चन बर्फ काटनेवाले जहाज की है। अगर यहाँ से बर्फ काटनेवाले जहाज का इन्तजाम हो गया, तो यात्रा जल्दी शुरू हो जाएगी।

"आप लोग घबराइएगा मत। दक्षिणी ध्रुव तो कुम्भकरण का देश है! कुम्भकरण का देश देखकर लौटूँगा तो आपको सब बताऊँगा। मेरा मन बहुत है इस टीम के साथ जाने का, पर हम सरकारी नौकर हैं। पता नहीं कमाण्डर इजाजत देते भी हैं या नहीं। अगर हेड-क्वार्टर्स से इजाजत लेने की बात उठी तो नहीं जा पाऊँगा। जब तक इजाज़त मिलेगी तब तक यह लोग जा चुके होंगे।

"आप किसी बात की फ़िक्र न करें। अगर कमाण्डर ने इजाज़त दे दी तो मैं ज़रूर जाऊँगा। दक्षिणी ध्रुव देश के आऊँगा! लगभग तीन महीने का प्रोग्राम है, दक्षिणी ध्रुव प्रदेश में रुकने का। आने-जाने में जो दिन लगेंगे, वे अलग। अगर जाने का अवसर मिल गया तो फिर लौटते ही घर पहुँचूंगा, नहीं तो पिछला प्रोग्राम ही रहेगा। जिज्जी न्नोग को नमस्ते।···"

ख़त का कोई खास सिर-पैर माँ की समझ में नहीं आया। बह सिर्फ़ इतना समझीं कि बीरन कुम्भकरन के देश जा रहा है और वहाँ से लौटकर सीधा घर आएगा। नमता बीच ही में उठकर चली गई थी। समीरा ख़त को समझने के लिए दोबारा पढ़ने लगी थी।

कोई किनारा नहीं

कमाण्डर ने इजाज़त दे दी थी कि वीरन उस साहसिक अभियान पर जा सकता है। वीरन ज्यादा खुश इसलिए हुआ कि उसे कतई उम्मीद नहीं थी कि आज्ञा मिल जाएगी, पर कमाण्डर जटार अपने 'बच्चों' को हमेशा साहसिक कामों के लिए बढ़ावा देते थे। वीरन को पहले यह नहीं मालूम हुआ कि उस विदेशी टीम का लीडर उसे किस रूप में ले जाना चाहता है लेकिन उस अभियान में शामिल होने की अपनी इच्छा के वशीभूत वह किसी भी रूप में जाने को तैयार था।

टीम के लीडर के पास से वह बहुत-सी किताबें और रिपोर्टें भी उठा लाया था ताकि दक्षिणी ध्रुव की ज्यादा से ज्यादा जानकारी हो जाए। खुद उसका जहाज़ न्यूज़ीलैंड से दक्षिण अमेरिका जाने वाला था। तीन महीने बाद उसके लौटने की तारीख थी। वापसी पर वीरन को अपना जहाज़ पर्ल बन्दरगाह पर पकड़ना था।

दक्षिणी ध्रुव अभियान के लिए तैयारियाँ शुरू हो गई थीं। 'आइस क्रूज़र' का इन्तज़ाम नहीं हो पाया था। पता यह लगा था कि आस्ट्रेलिया के किसी शहर के कार्पोरेशन के पास बर्फ काटनेवाला जहाज़ है, उसमें कुछ मरम्मत की ज़रूरत है। अभियान दल का लीडर उसे प्राप्त करने में लगा हुआ था।

दक्षिणी ध्रुव प्रदेश में अपने स्वार्थों के लिए कई देश भीतरी मारकाट में उलझे हुए थे। इंग्लैंड, फ्रांस, न्यूजीलैंड, आस्ट्रेलिया और नार्वे अपने-अपने दावे ध्रुव-प्रदेश पर कर रहे थे। हर देश ने अपने-अपने नक्शे बनाए हुए थे और उन नक्शों में दक्षिणी ध्रुव प्रदेश को

अपना उपनिवेश घोषित किया हुआ था। यह लड़ाई अभी नक्शों पर ही चल रही थी। खुद दक्षिणी ध्रुव प्रदेश में पहुँचकर उसे अपना वास्तविक उपनिवेश किसीने भी नहीं बनाया था।

अमेरिका उस दौड़ में पीछे नहीं रहना चाहता था। इसीलिए वह चाहता था कि समय-समय पर उसके अभियान दल दक्षिणी ध्रुव प्रदेश में पहुँचते रहें ताकि भविष्य में वह कानूनन यह साबित कर सके कि वह अमेरिका का वास्तविक उपनिवेश है, जहाँ से उसके बराबर सम्बन्ध रहे हैं। इस नीति के मातहत पहले भी कुछेक अभियान दल उस प्रदेश में जा चुके थे—यह अमेरिकी अभियान दल ध्रुव प्रदेश से रिश्तों को दोबारा ताज़ा करने जा रहा था।

वीरन ने और कुछ नहीं सोचा, सिवा इसके कि वह बर्फ से ढके लाखों मील लम्बे प्रदेश और वहाँ की अनोखी प्रकृति को देखेगा।

'''कालेज में पढ़ते समय उसने बहुत-से सपने देखे थे।'''भूगोल की किताबों और एटलसों को वह घण्टों पलटा करता था और कल्पना किया करता था कि भविष्य में वह किन-किन प्रदेशों में जाएगा। नक्शों पर समुद्री रास्तों की लकीरों के सहारे वह पूरी दुनिया घूमकर लौट आता था।

समुद्री रास्ते उसे एक नई दुनिया में ले जाते थे'''ऐसी दुनिया जिसे उसके सिवा और किसीने नहीं देखा था। अनजान टापुओं पर पहुँचना कैसा लगेगा? और वहाँ के भीषण जीव-जन्तु! पता नहीं किसी टापू पर आदमी मिलें या न मिलें'''और नक्शों पर खिंची लाइनों के सहारे वह अपने जहाज़ के पाल उड़ाता हुआ लाखों मील दूर निकल जाता था'''कभी-कभी तूफानों में घिर जाता था'''ऊपर-नीचे गिरती खौफनाक लहरों पर झूलता था और कभी चारों तरफ हज़ारों मील के विस्तार में फैले समुद्र की मनहूस खामोशी से घबरा उठता था'''चारों तरफ समुद्र'''समुद्र और समुद्र!

अभियान जहाज़ में पहली रात बड़े अजीब पसोपेश में गुज़री''' न जाने क्यों उसका मन बहुत उदास हो गया था। एकाएक अपने

जहाज़ को छोड़कर विदेशी जहाज़ पर पहुँचकर वह बहुत अकेला महसूस करने लगा था।...अपनों से दूर जाना कितना कष्टदायक होता है !

सबके चेहरे उसके सामने घिर आए थे।...कैसे बीते थे दिन...पूरा परिवार जैसे बीच समुद्र में फँस गया था। जहाँ दूर-दूर तक न कोई किनारा था, न कोई आदम न आदमजाद...ऐसा भी कोई नहीं जिसे आवाज़ दी जा सके ! आगे जानेवाले जहाजों के मस्तूल भी ओझल हो गए थे...और तब उस वीरान और खौफनाक सन्नाटे के बीच सब लोग एक-दूसरे को भयग्रस्त और लाचार आँखों में देखा करते थे। किसीके पास कोई शब्द बाकी नहीं बचा था। उस आतंक के बीच बड़ा भयंकर सन्नाटा था और उस सन्नाटे में धीरे-धीरे कुछ लगातार भरता जा रहा था। मृत्यु की आहट तक सुनाई देने लगी थी। उसका ठंडापन नसों में भर गया था। कितने भयावह थे वे दिन...तब कितनी दहशत होती थी !

उन दिनों बाबू जी दिल्ली की सड़कों की खाक छानकर बेजान-से लौटते थे...और अपनी खामोश आंखों से कहते थे—"कोई किनारा नहीं ! कोई किनारा नहीं..."

तब सचमुच कहीं कोई किनारा नहीं था...एक कोने में बैठकर वह नक्शे देखता रहता था और अनजान समुद्री रास्तों पर जाकर फिर घर लौट आता था। तब उसे बहुत आश्चर्य होता था कि बाबू जी को कोई किनारा क्यों नहीं मिलता...

और तब कभी-कभी वह यह भी पूछना चाहता था कि अपना टापू छोड़कर घरवाले समुद्र में क्यों उतर पड़े हैं ? क्या खोजने और पाने के लिए वे दिल्ली चले आए हैं ?

तूफान में फँसे हुए जहाज का कमाण्डर जितना भयभीत और बौखलाया होता है, वैसी ही हालत बाबूजी की होती थी...और जहाज़ डूबने का क्षण कब आ जाएगा, यह किसीको पता नहीं था। पर वह क्षण कहीं आस-पास ही था, इसका एहसास सभीको था। जहाज

के कम्पास बेकार हो गए थे और दिशाएँ खो गई थीं…

उस दिन अमेरिकी अभियान जहाज पर पहुँचकर घर के सब लोग उसे बेतरह याद आए थे। मन उचट गया था। एक पल के लिए ख्याल आया था कि उसे छुट्टी लेकर घर चले जाना चाहिए। छुट्टी इस अभियान में खत्म हो जाएगी, तो बाद में पता नहीं कब मौका लगे…

बन्दरगाह में और जहाज भी थे। समुद्र पर धुंध छाई हुई थी। रोशनियाँ शमशीर की तरह समुद्र के गहरे जल में घुसी हुई थीं। पानी के थपेड़ों की मद्धिम आवाज आ रही थी। उसके जहाज पर दल के साथ जानेवाले कुत्ते बुरी तरह भौंक रहे थे।

दल के नेता ने यात्रा के शुभारम्भ का समय ऐसा चुना था कि ध्रुव प्रदेश तक पहुँचते-पहुँचते सर्दियाँ खत्म हो जाएँ और छः महीने की लम्बी रात भी बीत चुकी हो। जिन दिनों देश गर्मी में झुलस रहा होता है, उन्हीं दिनों दक्षिणी ध्रुव प्रदेश में सर्दियों का मौसम होता है। अगस्त के अन्त में कहीं सूरज के दर्शन होते हैं और तब पतझर शुरू होता है। वह यही सोचता रहा कि उस हिम-प्रदेश में पतझर भी क्या होगा, जहाँ पत्तों का नाम तक नहीं है।

जहाज पर अध्ययन-गोष्ठियाँ भी चल रही थीं, जिनमें ध्रुव प्रदेश के बारे में जानकारी दी जा रही थी। दूसरे दिन से वह सभी कार्यक्रमों में भाग लेने लगा। स्लेजवाली टुकड़ी को बताया जा रहा था कि बर्फ के मैदानों में शिविर कैसे बनाए जा सकते हैं…हिम के घातक बवंडरों से कैसे बचा जा सकता है और कुत्तों को जीवित रखने के लिए किन बातों का ध्यान रखना पड़ेगा।

डेक पर लाखों तरह की चीजों का अम्बार लग गया था। रसद के अलावा पेट्रोल के पीपों, तम्बुओं, शीत-वस्त्र और यांत्रिक सामान की पेटियों से सारी जगह भर गई थी।

जब वह टहलता हुआ डेक पर पहुँचा था, तब उसने कुछेक कर्मचारियों को झण्डे लपेटते हुए देखा था। उपनिवेश की स्थापना और उसपर अपने अधिकार-चिह्नों को छोड़ आने के लिए बड़ी तादाद में

अमेरिकी राष्ट्रध्वज सिलवाए गए थे। बर्फीले रास्तों पर संकेत देने के लिए जो छोटी-छोटी झंडियाँ बनाई गई थीं, वे सभी अमेरिकी राष्ट्रध्वज की लाइनों और सितारों के नमूनों पर ही बनी थीं।

और जहाज जब चला तब सैकड़ों लोगों ने तट से उन्हें विदाई दी। डेक की रेलिंग पकड़े बीरन भी अपरिचितों को हाथ हिला-हिलाकर विदाई देता रहा'''तब उसे बड़ा अजीब-सा लगा था। तरह-तरह की बातें मन में उठने लगी थीं। इतनी बड़ी दुनिया में कितने लोग हैं जो उसकी खैरियत के लिए दुआएँ माँग रहे हैं'''और विदाई दे रहे हैं कि कुशलता से वापस आना'''पता नहीं, दल के कितने साथियों के बिलकुल अपने लोग तट पर खड़े हाथ हिला रहे हैं और कितनी आँखों में आँसू झिलझिला रहे होंगे। कितनी औरतें चुपचाप विदा देकर खैरियत से उनके वापस आने की राह देखती रहेंगी।

एक क्षण के लिए बीरन को लगा था कि जैसे एक खिड़की तट पर जड़ दी गई है और उसकी सलाखों के पास से डबडबाई हुई दो आँखें उसे भी विदा दे रही हैं। पर दूरी बढ़ती जा रही थी। नीचे समुद्र खौल रहा था और तट छूटता जा रहा था। तट पर खड़े हुए लोग धुंधलके में डूबते जा रहे थे। कुछ देर बाद सब कुछ डूब गया था। बन्दरगाह का अहसास खत्म हो गया था'''उसके नक्श मिट गए थे। जैसे सब कुछ अथाह जल में समा गया हो या जैसे एकाएक पानियों में डूबी दुनिया से वह जहाज उसे लेकर सतह पर आ गया हो। चारों तरफ पानी ही पानी!

जहाज पर रात-दिन चलने वाली भाग-दौड़ खत्म हो गई थी जो अस्त-व्यस्तता थी, वह समाप्त हो गई और अब जैसे कुछ खास काम करने को नहीं रह गया था। कुत्ते बराबर भौंकते जा रहे थे। उनका भौंकना बन्द नहीं हो रहा था। खच्चर चुपचाप दाना खा रहे थे। वे अपने लम्बे-लम्बे कान हिलाकर ही जैसे एक-दूसरे से बातें कर रहे थे।

अब जहाज़ पर अभियान के सारे सामान की देख-भाल शुरू हो गई थी। ज़रूरत पड़नेवाली हर चीज़ का परीक्षण किया जा रहा था··· लेकिन बहुत निश्चिन्तता से। एक खामोशी-सी छा गई थी···

कभी-कभी वीरन को जहाज़ की जिन्दगी इसलिए खलने लगती थी कि बन्दरगाह छोड़ते ही अजीब-सी लापरवाही-भरी उदासी और सुस्ती छा जाती थी। करने के लिए कोई खास काम नहीं होता था। किसी भी काम में बहुत फुर्ती की ज़रूरत भी नहीं होती थी। सबके पास बहुत वक्त खाली होता था, जिसमें गप्प लड़ाने, जहाज़ पर जलपान-पार्टियां आयोजित करने, किताबें पढ़ने या डायरियां लिखने के अलावा और कुछ नहीं किया जा सकता था। नीचे होता अथाह समुद्र और ऊपर मटमैला आसमान।

कहीं-कहीं तो समुद्र का जल इतना सफेद और तेज़ होता कि आसमान पर भी उसका अक्स पड़ने लगता था। अक्स की सफेद धुंध में सिवा जहाज़ के और कुछ नज़र नहीं आता था। धुंध की सुरंग में लगातार मीलों का सफर जारी रहता था।

अपनी ड्यूटी से आफ होकर जब वीरन खाना खाकर केबिन में पहुँचा तब समुद्र एकाएक भयंकर हो उठा था। हिचकोले बहुत तेज़ हो गए थे। ऐसे में लिखना-पढ़ना तो दरकिनार, आराम से लेट सकना भी मुश्किल हो जाता था, खास तौर से खाना खाने के बाद।

वह अपने बर्थ पर बैठ गया था। दिमाग में तरह-तरह के ख्याल आ रहे थे। उसके सामने फैला था दक्षिणी ध्रुव का बर्फ का विस्तार··· हिमशृंग, हिम के मैदान, हिमनद, हिम-विवर और हिमद्वीप। और उन द्वीपों पर चुपचाप बैठे हुए पेंट्रल या पेंग्विन पक्षी!

हिमनदों या मीलों फैली बर्फीली समुद्री झीलों में महाकाय ह्वेल मछलियां या बर्फीली चोटियों पर बैठे हुए सील पक्षी! या फिर काई और काई के इर्द-गिर्द झालर की तरह छिरके हुए जीवाणु!

यहां वह भारत से मैत्री-यात्रा पर निकला था और अब "तब

अपने जहाज से उतरते वक्त होंठों पर मुसकराहट होती थी, आँखों में दूसरों को पहचानने की उत्सुकता और बाँहों में दोस्तों का जज्बा··· पर इस यात्रा ने तो उसे कहीं भीतर से बदलना शुरू कर दिया था। जहाँ वह जा रहा है—वह शत्रु-प्रदेश है···'स्नो-क्रूजर' बर्फ को काटेगा निर्जन बर्फ के मैदानों में शिविर स्थापित किए जाएँगे और उस शान्त प्रदेश में रहते जीव-जन्तुओं से लड़ाई शुरू होगी। प्रकृति की विकरालता से वे सब खुद डरे हुए होंगे और उन सबकी हिंस्र भावना से भयाक्रान्त होंगे वहां के जीव-जन्तु···

पर अछूते प्रदेश को छू सकने और आँखों में भर सकने का सम्मोहन भी कम नहीं था। आखिर इन्सान ऐसे ही अभियानों से ऊँचाई तक पहुँचा है।"

वह इन्हीं ख्यालों में उलझा हुआ था कि दल के नेता का आदेश मिला। वह उनके केबिन में पहुँचा तो कहा गया—"तुम नाविकों की वर्दी ले लो!

"पर मैं तो समझता था कि मुझे दल में शामिल किया गया है मैं नाविक के रूप में नहीं, अभियान दल के सदस्य के रूप में लाया गया हूँ। मुझे अभियान दल का भारतीय सदस्य स्वीकार किया जाएगा और मुझे शीत प्रदेश में पहनी जानेवाली वर्दी दी जाएगी···मैं सिर्फ नाविक के रूप में क्यों आता? मैं अपने जहाज पर भी रह सकता था।" वीरन ने क्रुद्ध क्रोध में कहा था।

"वह भी देखा जाएगा! आखिर नाविकों की भी जिम्मेदारी कम नहीं है। पूरे अभियान का दारोमदार नाविकों पर ही है। इसमें अपने को हीन समझने की कोई बात नहीं है।" दल के नेता ने कहा और वह अन्य ज़रूरी आदेश देने लगा।

वीरन इस भेद को समझ गया था। अभियान दल का सदस्य होता तो खोज का श्रेय उसे भी मिल सकता था पर अब तो उसे नाविक की वर्दी देकर सिर्फ एक कर्मचारी का दर्जा दिया गया था। और कोई चारा भी नहीं था। वीरन स्टोर में जाकर नाविकों की गर्म वर्दी ले आया जो विशेषतः हिम प्रदेशों में पहननी पड़ती है।

पर मन में कहीं वह बहुत हीन महसूस कर रहा था। अन्य देशों के सहयोगियों के साथ अजीब-सा व्यवहार हो रहा था। इस बात का पता उसे औरों से भी चला था कि हिम प्रदेश में जाकर उतरनेवाले दल में अन्य किसी भी देश का आदमी सदस्य के रूप में शामिल नहीं किया गया है। उन्हें सामान की देखभाल, यन्त्रों को चालू रखने, जहाज पर रहने, कुत्तों और खच्चरों का मुआयना करते रहने के काम ही बाँटे गए हैं। अपने आत्मसम्मान पर हुई इस चोट को वह बर्दाश्त नहीं कर पा रहा था। सारी चीजों के बावजूद अन्य सभी देशों के सहयोगियों का दर्जा नीचा हो गया था। वे सब सिर्फ इसलिए थे कि अमेरिकी अभियान-दल को कुशलता से दक्षिणी ध्रुव प्रदेश तक पहुँचाएँ, उनके आराम का ख्याल रखें और उनके साजो-सामान की देख-भाल करें। अभियान की सफलता में योगदान दें, पर सफलता के यश के भागी न बनें।

बर्फ में उगे पक्षी

कई हज़ार मील का सफर तय करके आखिर जहाज स्काट द्वीप पहुँचा। स्काट द्वीप पहुँचने से पहले समुद्र उग्र हो गया था और जहाज हिचकोले खाता रहा था। कर्मचारियों का काम ज्यादा बढ़ गया था। जहाज़ को स्काट द्वीप से आगे ले जाना बहुत मुश्किल होता जा रहा था। आसमान बादलों से भरा था और तूफान बराबर चल रहा था। कम्पास बेकार होते लग रहे थे। वीरन बहुत उद्विग्न था, पर सिवा उस स्थिति को झेलने के और चारा नहीं था। आगे बढ़ना जब एकदम नामुमकिन हो गया तब नाविकों ने कमाण्डर को सूचना दी···

सामने बर्फीला समुद्र था! बर्फीली शिलाओं और ह्वेलों से भरे उस सागर को पार करने के लिए एक और जहाज का इन्तजार था जो कि निश्चित तिथि को पहुँचने वाला था। वह जहाज़ ह्वेलों का शिकार करने के लिए आनेवाला था और उसीसे यह तय किया गया था कि वह उनके जहाज़ों को बर्फीला समुद्र पार कराएगा। दो दिन तूफानी समुद्र में रुकना पड़ा। आखिर वह जहाज़ पहुँच गया था और यात्रा फिर शुरू हो गई थी।

बर्फीले समुद्र को पार करते हुए वह भौंचक्का-सा चारों तरफ देखता रह गया था—दूर-दूर तक बर्फ का समुद्र था···और बर्फ पर बैठे थे सफेद सील! हज़ारों की तादाद में···जैसे वे बर्फ से ही पैदा हुए हों। पेंग्विन पक्षियों के झुण्ड जगह-जगह जमा थे···वे बोतलों की तरह बैठे हुए थे और छोटे पेंग्विन बर्फ में लेटे हुए थे। जहाँ-जहाँ समुद्र का पानी फूटकर निकल आया था वहाँ झीलें-सी बन गई थीं, उनमें वे हिमानी मछलियां खोज रहे थे।

चारों तरफ नीरवता थी…निर्जन एकांत। वह [illegible] देखता रह गया था! प्रकृति की विराटता सामने फैली हुई थी…[illegible] चल रहे थे। सर्द हवा और बर्फ के अलावा वहाँ कुछ भी नहीं था। चारों ओर था बर्फ…और खामोशी…सन्नाटा और बर्फ की [illegible]…

एक दिन बीरन ने ऐसा ही सन्नाटा और ऐसी ही बर्फ की [illegible] अपने पिता की आंखों में देखी थी…और वह सिहर उठा था। पता नहीं अब उनसे क्या होगा?…क्या जहाज पार हो रहा होगा?…उसका जहाज तब तक पूरब की ओर चलकर ह्वेल की खाड़ी के तट पर जा लगा था।

खाड़ी के कगारों को बीरन देखता रह गया था! अलौकिक था कगारों का दृश्य। और मीलों दूर तक फैली हुई बर्फ की सूनी खाड़ी!

जहाज खाड़ी में ही रुका। अभियान-दल के लोग उतरकर शिविर के लिए जगह तलाश करने लगे। 'कर्मचारियों' को जहाज पर ही रुकना पड़ा। कुछ दूर पर ही समतल हिम-प्रदेश मिल गया था।

सबसे पहले दल के नेता ने वहां अमेरिकी राष्ट्र का ध्वज गाड़ा और उसके बाद जहाज से सामान का उतारा जाना शुरू हुआ। सामान उतारना जोखिम का काम था। 'कर्मचारियों' से सामान उतरवाने में मदद ली गई…कर्मचारियों में अन्य देशों के लोग थे पर अभियान दल में सिर्फ अमेरिकी। उन्हें सिर्फ कर्मचारियों का दर्जा दिया गया था. यही बात बीरन को रह-रहकर और बहुत ज्यादा खल रही थी। उन्हें कोई भी महत्वपूर्ण काम नहीं सौंपा गया था।

धीरे-धीरे बर्फ के समतल मैदान पर उपनिवेश बस गया। शिविर बना लिए गए। रास्तों पर झण्डियां लगा दी गईं। स्लेजें [illegible] दी गईं। गुफाएं काटकर उनमें कुत्तों को बसाया गया।

शिविर अभी बने ही थे कि बर्फ की आंधी आ पड़ी। जहाज के लोग भीतर घुस गए। शिविरों पर बर्फ की मोटी परतें बन गईं। बर्फ की मोटी तह ऊपर जम जाने के कारण भीतर [illegible]।

'कर्मचारियों' के साथ बीरन भी जहाज पर ही [illegible]। अभियान दल के अन्य सदस्य अनुसंधान कार्यों में [illegible]

जहाज वालों के लिए इधर-उधर जाना मना था। कभी जब मन ऊब जाता तब वीरन जहाज से उतरकर शिविर तक आ जाता। और शिविर में जो कुछ हो रहा था, उसे देखता-सुनता रहता। एक टुकड़ी दक्षिणी ध्रुव की ओर प्रस्थान करनेवाली थी···एक टुकड़ी बर्फ की परतों को भेदकर समुद्र-तल की गहराई का पता लगाने में संलग्न थी।

डिब्बों में बन्द खाना ज्यादातर खराब हो चुका था इसलिए एक टुकड़ी ह्वेल का शिकार करके मांस इकट्ठा करने गई थी। सील और पेंग्विन का मांस भी इकट्ठा किया गया था।

जब भी वीरन का मन उचटता तब वह अभियान दल के उस अमेरिकी सदस्य के पास जाता जो अपने देश के चिड़ियाघरों के लिए सील तथा पेंग्विन पक्षी पकड़ रहा था। पेंग्विन पक्षियों को जीवित रखना टेढ़ा काम था, क्योंकि वे पानी के पास ही रहते थे और बर्फ पर बिखरा या दिया हुआ भोजन नहीं खा पाते थे। चिड़ियाँ पकड़ने-वाले अमेरिकी ने पेंग्विनों के लिए बर्फ काटकर एक गड्ढा बना दिया था। उसीमें उन्हें कैद कर दिया गया था। जहाज पर सील और ह्वेल का जो माँस इकट्ठा किया गया था, उसमें से रोज वीरन पेंग्विनों का हिस्सा लेकर आता क्योंकि हिमानी मछलियाँ पकड़ना मुमकिन नहीं था। पेंग्विन ह्वेल की चर्बी और सील का मांस आसानी से खा लेते थे। पर वे बराबर वहाँ से भागने की टोह में रहते थे।

तीसरे दिन वीरन ने देखा कि उन पक्षियों ने भाग जाने के लि बर्फ में सीढ़ियां खोद ली हैं और उन सीढ़ियों से चढ़कर पेंगि भाग भी गए थे। उन्हें कैद रखने के लिए बाद में गड्ढे फट्टियां लगा दी गई पर पेंग्विनों ने धीरे-धीरे उन फट्टियों कर लिया और जितने उस कैद से भाग सकते थे, भाग

हो गया। तुषार के बाद लगभग सत्ताईस घंटों तक हिमानी आंधी चलती रही। चारों ओर तहलका मच गया। जहाज़ अपने आप खाड़ी में से खिसककर दो मील दूर पहुँच गया। गिरते हुए तापमान को देखकर अभियान-दल के नेता ने जहाज़ को वापस न्यूज़ीलैंड जाने का हुक्म दिया।

"और आप लोग!" बीरन ने नेता से पूछा था।

"हम लोग इधर रुकेंगे!" नेता ने कहा था, "हम यहां रात शुरू होने तक रुकेंगे···समझो चार महीने और···पर आप लोग जहाज़ वापस ले जाइए। हमने रेडियो मेसेज भेजकर दूसरे जहाज़ का इन्तज़ाम किया है। उससे हम वापस चले आएंगे!"

पर जहाज़ चलने से पहले नेता ने हुक्म दिया कि जहाज़ से लौटने वाले सब लोग अपनी कैमरा-रीलें, डायरियाँ नोटस, रोज़नामचे, तालिकाएं या ऐसा अन्य कोई दस्तावेज़—जो उन्होंने ध्रुव प्रदेश में तैयार किया हो, जमा करके ही वापस जाएंगे। इस हुक्म पर सभी 'कर्मचारी' बिगड़ उठे थे और वे इस हुक्म को मानने के लिए तैयार नहीं थे। उन्हें अभियान दल के सदस्य का दर्जा तो दिया नहीं गया था। उन्हें तो सिर्फ कर्मचारियों-नौकरों की तरह लाया गया था। वे अपना कोई सामान छोड़कर नहीं जाएंगे। आखिर दल के नेता को झुकना पड़ा था अन्त में उन्हें जाने की इजाज़त मिल गई थी। तापमान के गिरते जाने के कारण जहाज़ का लौटना लाजिमी हो गया था।

और जब जहाज़ लौटा तब खाड़ी के कगारों पर अभियान दल के लोगों ने उन्हें विदाई दी थी और जहाज के लोगों ने वहाँ छूटे हुए लोगों की कुशलता की कामना की थी। बीरन का जहाज़ चल पड़ा था।

सूरज की रोशनी बर्फ पर बिछल रही थी। इतने दिनों के बीच बीरन ने रात नहीं देखी थी। रात के नाम पर सिर्फ सफेद हिमानी धुंध का घटाटोप देखा था, जिसमें सूरज छिप जाता था।

···जहाज़ लौटते हुए जब हिमसागर के बीच से गुज़रा तब हजारों श्वेत सील और बोतलों की तरह बैठे पेंग्विन पक्षी उन्हें चुपचाप देख

रहे थे ! वीरन यह दृश्य तब तक देखता रहा, जब तक वे आँख से ओझल नहीं हो गए। बर्फ में उगे हुए पक्षियों को वह भुला नहीं पा रहा था। उसे तब एक और ध्रुव प्रदेश भी दिखाई देता—जहाँ उसके घरवाले छूटे हुए थे···और उसी ध्रुव प्रदेश में सलाखों वाली एक खिड़की भी उभर आती थी···

आखिर जहाज लम्बी यात्रा के बाद न्यूजीलैंड वापस पहुँच गया था। बन्दरगाह में पहले से ही उनके जहाज के लौटकर आने की खबर पहुँच चुकी थी···दक्षिणी ध्रुव पर छूटे हुए साथियों के मित्रों, सम्बन्धियों की भीड़ बन्दरगाह पर लग गई थी और सभी लोग किसी न किसी की कुशल-क्षेम पूछ रहे थे।

वीरन से भी एक आयरिश ने पूछा था—"तो वापस आ गए ? खुदा तुम्हारी उम्र दराज करे···" वह आशीर्वाद देता हुआ चला गया था। उसे झटका-सा लगा था। उस आयरिश की शक्ल बाबू जी से कितनी मिलती-जुलती थी !

वीरन को वहाँ से पर्थ पहुँचना था। उसे घर बेतरह याद आ रहा था। यादों में वे पेंग्विन पक्षी अटके हुए थे जो बर्फ के गड्ढों में कैद थे और बराबर निकल भागने की कोशिश में लगे हुए थे। चाहकर भी वह उन्हें भुला नहीं पा रहा था। विशाल हिम-खण्डों, बर्फ की घाटियों, समतल हिम-मैदानों, ह्वेल से भरे हुए सागर-प्रदेशों, हिमानी अंधड़ों, तुषारपात और भयानक हिम-शिखरों को वह एक बार भूल सकता था, पर गड्ढों में बंदी वे पक्षी उनकी याद में कौंध जाते थे··· कितने लाचार और बेबस थे···निकल भागने के लिए हर कोशिश करते हुए वे मासूम पक्षी ! तारा और समीरा की तरह भोली आँखोंवाले···उतने ही बेबस और लाचार···

और फिर तुषारपात में फँसा हुआ जहाज याद आता···या फिर बर्फ के मीलों गहरे मैदानों के नीचे समुद्र का खौलना याद आता, जब

पूरा हिम-मैदान फट गया था। मीलों लम्बे हिमखण्ड सरकने लगे थे और उसका जहाज बेबसी में दो मील दूर बह आया था···जहाँ किसी का कुछ बस नहीं चलता! पता नहीं किस क्षण जहाज टुकड़े-टुकड़े होकर बिखर जाए और उसके यात्री हिम-गह्वरों में समा जाएँ! ऐसा ही एक जहाज और भी था···जिसके नाविक बाबूजी थे···

वीरन बुरी तरह थका हुआ था। वह जल्दी से जल्दी पर्थ पहुँचकर अपने जहाज का इन्तजार करना चाहता था, जो उसे परिचित तटों की ओर ले जाएगा।

वह ऐसी सृष्टि से लौटा था जो अपनी सृष्टि की बेतरह याद दिलाती थी। दक्षिण न्यूजीलैंड होता हुआ वह स्थल-मार्ग से पर्थ पहुँच-कर किसी भी भारतीय जहाज के लौटने की प्रतीक्षा कर रहा था। तभी उसे मालूम हुआ कि इत्तफाक से उसका अपना जहाज ही मैत्री-यात्रा पूरी करने के बाद पर्थ लौटनेवाला था। जब तक उसका जहाज आए उसे पर्थ में ही रुकना था। वह निश्चिंत हो गया।

बन्दरगाह के एक होटल में वह कई दिन लगातार सोता रहा। जो हिमरोग हो गए थे, उनका इलाज करवाता रहा। पूरे बदन की मालिश करके नहाने में ज्यादा वक्त गुजारता रहा।

आखिर एक दिन सही सूचना मिली। पता लगा था कि जहाज ग्यारह दिन बाद लौट रहा था। घर के लिए उसने अपनी विकट यात्रा का पूरा विवरण लिख भेजा था। यह भी लिख दिया था कि बम्बई पहुँचते ही, जैसा भी होगा, वह कुछेक दिनों की छुट्टी लेकर दिल्ली पहुँचेगा, ताकि सब लोगों को देख सके और उनके साथ कुछ वक्त गुजार सके। ज्यादा वक्त उसे इसलिए नहीं मिलेगा कि इस यात्रा में इतना समय लग गया है कि अब कई साल तक लम्बी छुट्टी मिलना मुमकिन नहीं होगा।

खोई हुई आवाज

जिस दिन पर्थ से वीरन का खत घर पहुँचा, उसी दिन से उसकी राह देखी जाने लगी। घर में जो भूचाल तारा को लेकर आया था, वह भी शान्त हो गया था। तारा की शादी कर दी गई और वह एक बक्सा सामान लेकर अपने घर चली गई।

जब से तारा गई, समीरा बहुत अकेली रह गई थी। आमदनी में भी बहुत कमी आ गई थी। रम्मी और हरबंस का लेन-देन भी खत्म हो गया था। अब यह अच्छा नहीं लगता था कि दामाद से कुछ भी लिया जाए। तारा के रुपये आने भी बन्द हो गए थे और वक्त-बेवक्त जो मदद उससे मिल जाती थी, वह भी समाप्त हो गई थी।

तारा गई तो घर बहुत सूना हो गया। वीरन के मनीआर्डर भी पिछले पाँच महीने से नहीं आ रहे थे। समीरा फीस के रुपयों का इन्तजाम जैसे-तैसे अपनी दीदी से करती रही, पर वे लोग भी निकट भविष्य में आनेवाले बच्चे के लिए पैसा जोड़ने में लगे हुए थे।

श्यामलाल की हालत फिर खस्ता थी। जब से उनके खरीद-फरोख्त के 'व्यापार' का भेद खुल गया था, तब से खरीदार लोग ज्यादातर मालिकों से ही सीधे सामान खरीदने लगे थे। सैकिण्ड-हैण्ड सामान के खरीदार बहुत ज्यादा नहीं थे···वे खुद चार पैसे बचाने में लगे रहते थे। धीरे-धीरे उन सब लोगों ने श्यामलाल को पहचान लिया था।

उन दिनों श्यामलाल बहुत परेशान थे। वीरन का मनीआर्डर भी नहीं आया था, घर में एक पैसा भी नहीं था और समीरा की इम्तहान की फीस जमा करने के लिए रुपये चाहिए थे। जाननेवालों ने उधार देना बन्द कर दिया था। कई दिनों से लगातार वह अखबारों के खरीद-फरोख्त के कालम देख रहे थे। पटेल नगर में फर्नीचर की

ाक्री का इश्तहार था। वह किस्मत आजमाने के लिए अपनी चैक-
्क लेकर पहुँच गए। जाते ही उन्होंने सौदा तय किया और अगले
ाहकों के इन्तज़ार में बैठ गए।

सदर का एक कबाड़ी आया। उसने श्यामलाल को देखा तो सामान खरीदने की बात ही टाल गया—"मैं तो सिर्फ देखने आया था···रकम ही नहीं है। खरीदेंगे कहाँ से !"

श्यामलाल उसकी बात से चौकन्ने हो गए। वह समझ गए कि कबाड़ी उनसे सामान नहीं खरीदना चाहता।

"तो अपनी पसन्द की दो-तीन चीज़ें खरीद लो !···पैसे की ऐसी क्या बात है !" श्यामलाल ने कहा।

"पैसा है ही नहीं !" वह कबाड़ी सामान देखने के लिए भी भीतर नहीं घुसा। काफी देर तक बाहर खड़ा-खड़ा बीड़ी पीता रहा। इस बीच जो और कबाड़ी आए, उन्हें भी उलझाए रहा। तीन-चार कबाड़ियों का गोल जब बाहर ही रुका रहा तब श्यामलाल समझ गए कि उन लोगों ने कुछ तय कर लिया है और अब यह बीच की मुनाफागीरी आगे नहीं चलेगी। उनके हाथों के तोते उड़ते जा रहे थे। इस बार वह फिर फँस गए थे। मालिक को चैक दे चुके थे और अब कोई चारा नहीं था। आखिर हवा का रुख देखकर वह खुद ही कबाड़ियों के पास पहुंचे और सीधे से अपनी बात उनके सामने रख दी—"भई, तुम लोग सामान उठाओ···जो मेरा मुनाफा बनता है, मत देना !"

लम्बा वाला कबाड़ी हँसने लगा।

"ईमान से कहता हूँ ! मालिक से पूछ लो, मैंने क्या दिया है···इसके ऊपर कुछ मत दो !···सामान तो देख लो !" कहते वह उन्हें फुसलाकर भीतर ले आए। कबाड़ियों ने सामान देखा और मुंह बिदका दिया—"हमारे लायक नहीं हैं। यह ऊँचे लोगों के काम का है···"

"कैसी बातें कर रहे हो···" श्यामलाल ने चैक की रसीद दिखाई "अपनी आँख से देखकर भरोसा करो···चार सौ तीस दिए हैं। तु
इतना ही निकालो···मुनाफा गया भाड़-चूल्हे में। एक दिन न सह
मुनाफा !"

"आपने सौदा गलत कर लिया है !" एक कबाड़ी ने राय दी—"यह सारा सामान तीन सौ से ज्यादा का नहीं है ! दूसरी पालिश है··· लकड़ी भी कमजोर है ! सिर्फ दो-दो है !"

श्यामलाल बुरी तरह फँस गए थे। उन्होंने जैसे-तैसे, मुनाफा छोड़कर, सौदा पटाया अपना फँसा हुआ रुपया बचाया और अपने हाथ झाड़कर अलग खड़े हो गए।

उस दिन से उन्होंने समझ लिया था कि कबाड़ियों ने मशवरा कर लिया है। वह उन्हें बीच में बर्दाश्त नहीं करेंगे। यह बात चाहे छोटी-सी रही हो, पर इसने श्यामलाल की तो चूलें ही हिला दी थीं। उनका सारा खेल बिगड़ गया था। आमदनी का एक यही जरिया था जो वक्त-बेवक्त काम निकाल देता था। हालांकि चैक देते वक्त हमेशा उनकी छाती धड़कती रहती थी पर यह जुआ खेलना उनके लिए, लाज़िमी हो गया था।

तारा की शादी के बाद से उन्होंने सोचा था कि अब वह जरा राहत की साँस ले पाएँगे, पर ऐसा हुआ नहीं। घर में रम्मो दबे स्वर में उन्हें बराबर कोंचती रहती। चीजों के दाम बढ़ते जा रहे थे और दिन-दिन वक्त काटना दूभर होता जा रहा था। समझ में नहीं आता था कि कहाँ से घर की पूर डाली जाए। दिल्ली जैसी जगह में आदमी के करने के लिए हज़ार काम थे पर उन्हें किसी काम में पैसा नहीं मिला। काम तो कोई भी शुरू किया जा सकता था, पर हमेशा बीच में ऐसे दिन आते थे कि काम अपने आप ठप्प हो जाता था, क्योंकि उसे जिलाए रखने के लिए पैसा नहीं होता था और ऐसे में थोड़ा-बहुत जोड़ा या उधार लिया हुआ मूल पैसा भी खत्म हो जाता था।

उस रोज जब एक भी पैसा नहीं आया तब श्यामलाल मुँह लटकाए लौट आए और खाट पर पड़ गए। रम्मो को भी फिकर थी। उनका उतरा मुँह देखकर वह चुप हो गई। बहुत हिम्मत करके वह तारा के पास गई, तो बात शुरू करने से पहले ही तारा ने सुना दिया

"इन्हें दुकान का दो हज़ार भरना पड़ गया…हमारी तो समझ में
आता अब कैसे क्या होगा !"
रम्मी उसका हाल-चाल पूछकर लौट आई। घर में पैर रखते ही
ने ऐलान कर दिया—"समीरा को पढ़ाने की कोई तुक मेरी समझ
नहीं आती…घर के काम की भी नहीं रह गई…कौन उसे कलक्टरी
रनी है !"

समीरा की पढ़ाई बन्द हो गई। वह फिर वहीं कोने पर बैठकर
ामनेवाली दीवार पर पड़ती परछाइयों में उलझी रहने लगी। वर
में भी ऐसा क्या करने-धरने को था।

और उन्हीं दिनों जब घर में सन्नाटा छाया हुआ था, एक रोज़
रात को दरवाज़े पर दस्तक हुई। श्यामलाल पड़े रहे। रम्मी ने भी
ख्याल नहीं किया। समीरा भी दस्तक सुनकर अनसुनी कर गई।

दूसरी वार दस्तक ज़ोर से हुई…

"देखो कोई है ?" श्यामलाल ने लेटे-लेटे कहा।

रम्मी दरवाज़े के पास ही थी, सो उठकर वही देखने गई। उसने
दरवाज़ा खोला। गली में अँधेरा था। दरवाज़े पर कोई नहीं था।
उसने झांककर गली में दोनों ओर देखा—कहीं कोई नहीं था। वह
चुपचाप आकर लेट गई।

"कौन था ?" श्यामलाल ने पूछा।

"कोई नहीं !"

"आवाज़ तो सुनी थी !"

"लगी तो मुझे भी थी। हवा होगी।"

"गली में देखा था……"

"हाँ !" वह थकी हुई थी। उबासी लेकर उसने करवट बदल ली।
तीनों चुपचाप पड़े रहे। समीरा कुछ देर बाद सो गई।

"देखो शायद कोई खटखटा रहा है !" एकाएक काफी देर बा
श्यामलाल ने फिर चौंककर कहा था।

"हवा ही होगी !"

"तुम देखो तो ज़रा…"

"कोई होगा तो फिर खटखटाएगा···"

वे दोनों भी चुप हो गए। धीरे-धीरे दोनों को नींद आ गई। सुबह के करीब रम्मी घबराई हुई उठी। उसने श्यामलाल को जगाया—"मेरी तबीयत बहुत घबरा रही है···"

"पानी दूं ?"

"हां···पता नहीं क्या हुआ···"

"सपना देखा होगा", पानी देते हुए श्यामलाल ने कहा—"कभी-कभी ऐसा हो जाता है।"

"सपना नहीं था···एकदम दिल धड़कने लगा···सपना देखती तो याद रहता।"

"भूल भी जाता है···कुछ आराम हुआ ?"

"धड़कन तो नहीं है, पर घबराहट बहुत हो रही है···!"

श्यामलाल उसकी पीठ सहलाने लगे। थोड़ी देर में रम्मी फिर सो गई तो श्यामलाल अपनी खाट पर चले आए। सुबह की खुनकी हवा में थी और आकाश में हल्की सफेदी फैल रही थी।

सुबह बहुत उदास थी। भारीपन चारों तरफ भरा हुआ था। समीरा का कालेज जब से छूटा था, वह बेहद चुप रहने लगी थी। श्यामलाल के पास कोई ऐसी बात ही नहीं होती थी, जिसमें बाकी दो शामिल हो सकें। रम्मी अपने में सोचती रहती थी। सुबह उठकर तीनों अपने काम में लग गए। रम्मी की तबीयत वैसे भी भारी थी। उसका जी नहीं लग रहा था। हर काम से मन उचट जाता था। पिछले कई महीनों से वह चीजों के न होने से भी परेशान आ गई थी। रसोई में एक चीज होती तो दस खत्म हो चुकी होतीं। कोई भी चीज पकाने चलती, तो शायद ही कभी पूरा और सही मसाला निकल पाता। जोड़ तोड़ करते-करते उसका जी खिसिया आता था। हमेशा यही तमन्ना रहती कि एक बार तो वह कायदे से कोई चीज पका सके···लेकि इसकी नौबत नहीं आती थी।

रात को पड़ी दस्तक ने भी उन सबको मन ही मन कहीं डरा दिया था—कहीं कोई चोर तो नहीं था! आजकल चोरों ने बहुत से तरीके निकाल रखे हैं। फिर घर में जवान लड़की है, क्या पता, कब किसकी नज़र बदल जाए। तरह-तरह के ख्याल दिमाग में आ-जा रहे थे।

"कल किसीने खटखटाया तो ज़रूर था···" एकाएक फिर श्यामलाल को उसी ख्याल ने आ दबोचा।

"लगा तो मुझे भी था···हैरत की बात है!" रम्मी को हल्के से फिर घबराहट होने लगी थी।

"इस बार भी बीरन का मनीआर्डर नहीं आया···"

"सोचा होगा घर चल ही रहा हूँ···सो काहे को मनीआर्डर भेजूं!" रम्मी ने समझाया।

"यही तो वह नहीं समझता···चार दिन में यहाँ तो बहुत फर्क पड़ता है। यह शहर ऐसा है कि बिना पैसे के यहाँ कोई पहचानता ही नहीं। पैसा पास है तो दुनिया अपनी है, नहीं तो कोई साला···" श्यामलाल चिढ़कर बोल रहे थे।

"कुछ समीरा के लिए भी अब सोचो!" धीरे से रम्मी ने कहा था।

"बीरन इस बार आए तो उससे भी बात करूंगा। सुना था, बम्बई में लाला हरिश्चन्द्र ने प्रेस लगाया है। अरे वही, जिनका पुख्ता मकान था अपने पिछवाड़े। जाति भाई भी हैं, लड़के भी दो हैं, दोनों लड़के भी प्रेस में ही हैं। खासी आमदनी है। बीरन आए तो उसीसे बात चलाऊँगा। वह वहीं बम्बई में बात तय भी कर सकता है···और अब बीरन के रुतबे-ओहदे का भी रोब पड़ेगा···" श्यामलाल सोच-सोचकर कहते जा रहे थे।

"उनका एक लड़का शायद लँगड़ा था···याद पड़ता है न···"

"दूसरा तो ठीक था! हो सकता है कि लँगड़े की शादी भी हो गई हो···न भी हुई होगी तो क्या बिगड़ता है। जिसके पास पैसा है उसका कज नहीं देखा जाता। उन्हें किस बात की कमी है!

"तुम्हारे दिमाग पर तो सिर्फ पैसा हावी हो रहा है!"

"इसमें गलत क्या है?"

"हूं !" रम्मी ठुनक पड़ी, "अपनी लड़की नहीं देखते···किसी से उन्नीस नहीं है। जब कोई नहीं मिलेगा तो धकेल दूंगी भाड़ में। पर देख के मक्खी कोई नहीं निगलता !"

"तो कौन अभी बात पक्की हुई जा रही है !" श्यामलाल ने कहा, "बीरन आएगा, पहले उससे बात करेंगे। अब उसकी राय भी जरूरी है।"

"उसी पर छोड़ो। हमसे-तुमसे ज्यादा दुनिया देख ली है उसने··· इस बार आए तो उसका मन भी जरा लेना। अपने लिए देखें क्या कहना है !"

"तुम समीरा या तारा से कभी पूछना। बहनों से कभी उसने जरूर कुछ कहा होगा !" श्यामलाल के चेहरे पर खुशी उभर रही थी।

"लड़का मेरा सीधा है। आफत की परकाला तो ये लड़कियां हैं। वह अपनी पढ़ाई पूरी कर गया, नौकरी-चाकरीवाला हो गया···पर कभी उसने एक पैसे के लिए तंग नहीं किया। ये रानी जी तो साल-भर पढ़ने के लिए गई और छील के रख दिया···आज यह किताब, कल वह कापी, परसों वह चन्दा···वह कैसे पढ़-लिख गया, पता लगा किसीको घर में ! न कभी पहनने-ओढ़ने का शौक, न टीमटाम, न फूं-फां ! जो मिल गया पहन लिया, जो दे दिया, खा लिया···" रम्मी बीरन के ख्यालों में खो गई थी—"मैं चाहती थी···उसके आने से पहले घर में दो-चार चीजें मंगा लूं। उसकी पसन्द की एकाध चीजें तैयार कर लूं···"

"अब तो उसका कद-कामद निकल आया होगा? तसवीर में उतना पता नहीं चलता ! वैसे वर्दी में जंचता बहुत है," श्यामलाल कह रहे थे—"अब तो पूरा आदमी हो गया है !"

और रम्मी के सामने एक विशालकाय तसवीर खड़ी हो गई··· जिसकी एक-एक मांसपेशी चमक रही थी···जिसके ··· निशान उसका देखा और दुलारा हुआ था···बाहुओं··· कानों की लवों पर उगे हुए रोएं और ···

बाल···घुटने के नीचे लगी चोट का निशान और हल्के से टूटा हुआ सामने वाले दाँत का कोना···और पूरे बदन से आती हुई उसके अपने दूध की गंध···

वीरन की बातों में कितना वक्त बीत गया, इसका अन्दाजा ही नहीं हुआ। धूप काफी चढ़ आई थी। श्यामलाल तैयार होकर बाहर निकल गए। वीरन आएगा इतने दिनों बाद, तो कुछ पैसा तो घर में खर्च के लिए होना चाहिए। ऐसे तो अच्छा नहीं लगेगा कि वह आते ही खर्चा करने लगे। आखिर वह क्या सोचेगा कि पिता जी ने इतना भी नहीं किया···

ये बीच के दिन उसके आने के इंतजार में के ही बीत रहे थे। घर बड़े, सलीके से साफ-सुथरा कर लिया गया था। खुद श्यामलाल ने कपड़े टाँगने के लिए एक दीवार पर अखबार जड़ दिया था। लकड़ी के रैक का निचला खाना जूते रखने के लिए खाली कर दिया। छोटी वाली मेज और कुर्सी उसके बैठने के लिए कोने में रख दी थीं। बल्ब पर लगा जाला साफ हो गया। समीरा ने गुसलखाना भी रगड़-रगड़कर धो दिया। पुराने बक्से में से हैंगर निकालकर कील पर टाँग दिया गया।

लेकिन जब लिखी हुई तारीख और गाड़ी से वीरन नहीं आया तब सबका मन उतर गया। रम्मी ने हल्के गुस्से से कहा—"इस लड़के की हमें यही बात पसन्द नहीं है···लिखेगा कुछ, करेगा कुछ···"

"सरकारी मामला है। कोई अड़चन पड़ गई होगी···" श्यामलाल ने उसकी तरफदारी की।

"फिर खत आ जाएगा कि मैं विलायत जा रहा हूँ! वहाँ से लौटकर घर पहुँचूंगा। उसे घूमने की चाट पड़ गई है!" रम्मी गुस्सा थी।

"अरे नहीं भाई···" श्यामलाल बोले।

तीनों इसी इन्तजार में थे कि वीरन के आने पर ही नाश्ता करेंगे।

जब दोपहर तक वह दूसरी गाड़ी से भी नहीं आया तब सबके

मुंह उतर गए। समीरा बड़ी देर दरवाजे पर खड़ी गली में देखती रही। नमता भी खिड़की पर आ गई थी। काफी देर तो दोनों बातें ही करती रहीं। थककर समीरा भीतर चली आई थी। श्यामलाल अब्दुल अजीज रोड और आर्यसमाज रोड के चौराहे पर छोटे-से पीपल के नीचे खड़े, हर आते-जाते स्कूटर-टैक्सी को देख रहे थे। रम्मी भी एकाध बार दरवाजे तक गई और नमता को खिड़की में बैठकर अखबार पढ़ते देख सकुचाकर लौट आई।

आखिर थककर श्यामलाल भी लौट आए। किसीका मन खाने को नहीं हो रहा था। शाम को हरबंस भी पता करने आया था। तारा की हालत बाहर निकलने लायक नहीं थी।

शाम को समीरा फिर बैठी परछाइयां देखती रही। बीरन नहीं आया था। दूसरे दिन के बाद इन्तजार भी टूटने लगा। घर फिर अस्त-व्यस्त होने लगा।

रोशनी के कई त्रिकोण

पाँचवें रोज एक आदमी उनका घर खोजता हुआ आया था। उसने दरवाजे पर दस्तक दी थी। थके-से श्यामलाल दरवाजे पर गए थे।

"वीरेन्द्रनाथ का घर यही है?" उस आदमी ने पूछा था।

"जी हाँ, फरमाइए," श्यामलाल ने कहा था—"आइए भीतर निकल आइए।" वह उसे भीतर ले आए थे।

"मेरा नाम चरनजीत सिंह है," उस आदमी ने बताया था—"मैं वीरेन्द्रनाथ के साथ ही हूं। उसी जहाज पर···उसका दोस्त हूँ··· हम दोनों साथ ही काम करते हैं···"

"आप छुट्टी आए हैं? वह भी आनेवाला था, फिर कोई खबर ही नहीं मिली!" श्यामलाल ने कहा।

रम्मी रसोई के दरवाजे पर बैठी उत्सुकता से बात सुन रही थी। समीरा दरवाजे से चिपकी खड़ी थी।

"जी हाँ···मैं जालंधर जा रहा था। घर नहीं है। सोचा, आप लोगों से मिलता चलूं···" चरनजीत बात कहने की भूमिका बाँध रहा था।

"जरा चाय-वाय बना ले समीरा! खड़ी-खड़ी क्या कर रही है।" श्यामलाल ने घुड़का।

"नहीं···नहीं···चाय रहने दीजिए। मुझे अभी ही चला जाना है। सामान वगैरह सब स्टेशन पर ही पड़ा है।" चरनजीत ने कहा—"वह बात यह है कि···"

"जल्दी से बना ला बेटा!" श्यामलाल अपनी बात में मशगूल थे—"हाँ···तो वह कब आ रहा है?"

"वह···। बात असल में यह है कि···" चरनजीत ने बहुत सँभलकर सधे हुए स्वर में सूचना दी—"वीरेन्द्र नाथ कहीं खो गया है···"

"खो गया है?" श्यामलाल मतलब नहीं समझ पाए।

"जी हाँ···सिंगापुर से चलने से पहले हम लोगों ने रात का खाना साथ ही खाया था। सुबह हुई तो उसका कोई पता नहीं लगा," चरनजीत ने आगे कहा, "एक खलासी डेक पर गया, तो उसने वीरेन्द्र की चप्पलें रेलिंग के पास पड़ी देखी थीं। जब पी० टी० के वक्त वह नहीं आया तब तलाश की गई। जहाज पर वह नहीं मिला। उसके बाद से उसका कोई पता नहीं है।"

"क्या कह रहे हैं आप?" श्यामलाल की साँस गले में ही अटक गई थी और आवाज भर्रा गई थी—"ऐसा कैसे हो सकता है···"

रुक्मी काँपती हुई उठकर खड़ी हो गई थी। समीरा ने आकर माँ की बाँह पकड़ ली थी।

"शक यह है कि कहीं कोई एक्सीडेंट न हो गया हो···जहाज पर जब वह नहीं मिला तब समुद्र में तलाश की गई। जहाज लौटाया गया···करीब सौ-सवा सौ मील के गिर्द में पूरा समुद्र देखा गया···सिंगापुर को खबर दी गई···अब तक उसका कोई पता नहीं चला है," चरनजीत कहकर चुप हो गया।

"हो सकता है वह सिंगापुर में रह गया हो!" श्यामलाल ने टूटती आवाज में कहा।

"वहाँ होता तो अब तक खबर मिल जाती। अब तक तो एक जहाज और पहुँच चुका है। उससे आ जाता···आपको यह खबर दे देना जरूरी था···इसीलिए मैं आया था। वैसे आप ज्यादा परेशान न हों···अगर कोई खबर मिली तो जहाज से फौरन आपको भेजी जाएगी या हैडक्वार्टर्स से खबर आ जाएगी···" चरनजीत खुद बहुत उदास हो गया था।

चरनजीत चला गया, पर उसी वक्त से घर में रोना-पीटना शुरू हो गया था। श्यामलाल खुद अपने आँसू नहीं रोक पा रहे थे, पर वह

बार-बार रम्मी को समझा रहे थे—"हौसला करो वीरन की माँ···समीरा इन्हें पानी दे···तू मत रो बेटी···अपशकुन क्यों करती हो तुम लोग···" समझाते-समझाते वह खुद फूट-फूटकर रो पड़े—"हे भगवान् ! अब क्या होगा। यह किस जनम का बदला लिया परमात्मा तूने !"

रम्मी ने दीवार से सिर पटक दिया था। और नीम बेहोशी में वह इतना ही बुदबुदा रही थी—"कहाँ खो गया मेरा बच्चा···हाय रे···कहाँ खो गया मेरा बच्चा···अब वो कहीं नहीं मिलेगा···वह नहीं मिलेगा। वीरन के बाबू !···वो यहाँ नहीं आएगा···"

पड़ोस की औरतें मुंह लटकाए बैठी थीं। एकाध औरतें आ-जा रही थीं। तारा भी आधी बेहोश दीवार से लगी बैठी थी। हरबंस और कुछेक आदमी श्यामलाल को साध रहे थे।

श्यामलाल किसीकी बात सुन ही नहीं पा रहे थे। सामने वाले घर के वकील साहब उन्हें समझा रहे थे—"अभी कोई सरकारी खत तो आपको मिला नहीं है···"

"अब खत का मैं क्या करूंगा वकील साहब···"

"आप सब्र तो कीजिए ! खोए हुए आदमी का यह मतलब नहीं कि आप हौसला तोड़कर बैठ जाएँ···कहीं बन्दरगाह पर रह गया हो···जहाज पर न पहुँच पाया हो···हज़ार बातें हो सकती हैं।"

"अब लाख बातें हों···मैं तो बरबाद हो गया···हाय बेटा···कुछ तो सोचा होता ! कैसे कटेगी यह पहाड़-सी ज़िन्दगी···" श्यामलाल को धीरज नहीं आ रहा था।

पास-पड़ोस वाले घटना जानने के लिए आते और हरबंस से बात पता करके, दुःख प्रकट करके, लौट जाते। गली से गुज़रते आदमियों की आँखों में भी घटना को जानने की उत्सुकता थी। वारदात जानकर वे निश्चिन्त हो जाते। घर में भयंकर खामोशी छा गई थी। और घरों में जिन्दगी उसी रफ्तार से जारी थी। खाना बनने की महक और ऊपर कमरे से किसीके गुनगुनाने का स्वर आ रहा था। बीच

वालों के यहाँ रेडियो मद्धिम आवाज़ से बज रहा था। वे घूमने जाते हुए एक मिनट के लिए भीतर आए थे, बात पता करके चले गए थे।

बरसाती वालों के दोस्त कहकहे लगाते हुए सीढ़ियों से उतरकर चले गए थे। उन्हें विदा करके, बरसाती वाला भी पूछने आया था और अफ़सोस ज़ाहिर करके चला गया था।

घर में मौत मँडरा रही थी। चारों तरफ़ डरावने साये भरे हुए थे। हल्के से हरबंस ने तारा से कहा था—"तुम घर जाकर आराम करो···"

"नहीं, यहीं ठीक है···मेरी फ़िक्र मत करो। तुम बाबूजी को सँभालो," तारा बोली थी।

"तुम्हारी हालत···" हरबंस ने कहा था।

"कुछ तो सोचा करो···" कहते-कहते तारा की आँखें फिर भर आई थीं—"जब तक भैया नहीं आ जाता, तब तक यहीं रहना है मुझे···अब उससे मिलकर ही जाऊँगी···अक्ल कुछ काम नहीं देती···" वह फूट-फूटकर रो पड़ी थी। सहारे के लिए उसने हरबंस का कंधा पकड़ लिया था। हरबंस की आँखें भी डबडबा आई थीं।

नमता वहीं पकने से लगी समीरा के पास चुपचाप बैठी थी। सब लोग चले गए थे। सिर्फ़ घर के लोग ही शोकमग्न बैठे हुए थे। जब रात काफ़ी हो गई तब नमता के घर का नौकर बुलाने आया था—"आपको घर बुलाया है।"

नमता चुपचाप उठकर चली गई थी। उसके जाने के बाद सब लोग बहुत अकेले रह गए थे। कमरे में जलते बल्ब की रोशनी कई त्रिकोणों में बाहर फ़र्श पर पड़ रही थी। पाँचों लोग रोशनी के त्रिकोणों से बचकर अँधेरे में बैठे हुए थे।

समीरा ने हल्के से माँ को उठाना चाहा तो लगा उन्हें फिट आ गया है। दाँती चिपकी हुई थी और उनके हाथ-पैर ठंडे थे। समीरा ने मुँह पर पानी के छींटे दिए तो उनके बदन में कुछ हरकत हुई थी और वह फिर चीखने लगी थी—"कहाँ खो गया बीरन···हम कहाँ से ढूँढ़कर लाएँ बेटा···बीरन बेटा···"

रात भर सब लोग इधर-उधर पड़े रहे। सुबह मुर्दों की तरह उठकर वे हाथ-मुंह धो आए और अजनबियों की तरह एक दूसरे को ताकते रहे। हरवंस ने बाहर से चाय मंगवा ली थी, पर सब गिलास पड़े-पड़े ठंडे हो गए। रम्मी भीतर चटाई बिछाकर सिसकती रही। समीरा एक कोने में बैठी फटी-फटी आँखों से गली के बाहर ताकती रही। श्यामलाल अपना बक्सा खोलकर तमाम पुराने कागजों को फाड़ते रहे और तारा लस्त-सी एक ओर मुंह छिपाए पड़ी रही। हरवंस ही अकेला था, जो इधर-उधर चहलकदमी कर रहा था और उन लोगों को समझा-बुझा रहा था। लेकिन किसीकी समझ में उसकी बातें नहीं आ रही थीं।

हरवंस ने जाकर श्यामलाल का हाथ पकड़ लिया और जबर्दस्ती सन्दूक बन्द कर दिया—"यह आप क्या कर रहे हैं बाबू जी!" उसने हल्के से डाँटा था।

"क्या करना है इन कागजों का हरवंस! अब किसके लिए छोड़ के जाना है···" वह फिर रो पड़े थे—"अच्छा गया बीरन समुद्र पर···हमारा जहाज तो डूबो गया···भैया···अब डूब गया सब कुछ···"

"घबराइए मत बाबूजी···" हरवंस ने समझाया।

"अब कोई यह नाव खेनेवाला नहीं है···हे भगवान···यही मर्जी थी तेरी···" श्यामलाल गहरी सांस लेकर वहीं जमीन पर अधलेटे-से हो गए।

घर में चूल्हा नहीं चला। हरवंस जाकर फिर डबलरोटी और छोले ले आया, पर दोपहर भी किसीने नहीं खाया। बहुत जबर्दस्ती करके उसने रम्मी को एकाध कौर खिलाया तो उन्हें उल्टी हो गई।

शाम को दरवाजे में एक खाकी लिफाफा पड़ा रहा। ममता की खिड़की बन्द थी। नहीं तो शायद वही उठाकर दे जाती। हरवंस बाहर निकला तो उसकी नजर लिफाफे पर पड़ी थी। वह सरकारी खत था।

सरकारी खत में बीरन के लापता होने की खबर दी गई थी और

कहा गया था कि खोज अब भी जारी है। जब तक अंतिम रूप से कुछ पता नहीं चल जाता, तब तक सरकार भी कुछ कहने में असमर्थ है। उस पत्र में घरवालों से भी आग्रह किया गया था कि अगर उन्हें कोई खबर मिले या कोई सुराग हाथ आए तो वे सरकार को तत्काल सूचित करने का कष्ट करें।

इस खत के आने से हरबंस को बड़ी ताकत मिली थी। वह समझ ही नहीं पा रहा था कि आखिर उन सबको कैसे समझाया-संभाला जाए। उसका दिमाग भी खासा परेशान हो गया था। उन लोगों की हालत देखकर उसका मन भी डूबने लगता और अजीब-सा दर्द उठने लगता था।

खत पाते ही वह भीतर लपका और कमरे में पहुँचकर ऊँचे स्वर में बोला—"आप लोग ख्वाहमख्वाह इतने ज्यादा परेशान हैं। यह लीजिए, कमांडिंग आफिस से खत आया है।" उसने खत पढ़कर सुना दिया और समझाने लगा—"सरकार को भी भरोसा है कि वह सिर्फ खो गया है। बन्दरगाहों पर कुछ पता चलता है? कहीं रह गया होगा···फासले भी तो हजारों मीलों के हैं···कोई करोलबाग, कनाट प्लेस की दूरी तो नहीं कि घंटे भर में लौट आना चाहिए!"

वह बोल रहा था। रम्मी आँखें फाड़े बहुत ध्यान से सुन रही थी। पूरी बात सुनकर बोली—"क्यों हरबंस बेटा! ऐसा हो सकता है कि वह कहीं रह गया हो? जहाज पर न चढ़ पाया हो। किसी छोटी-मोटी मुसीबत में फँस गया हो···"

"बिलकुल हो सकता है···" हरबंस ने समझाया। रम्मी ने अपनी आँखें पोंछकर बिखरे हुए बाल ऊपर किए। तारा और समीरा भी माँ के पास सरक आई थीं। श्यामलाल गौर से सब कुछ सुन रहे थे।

"क्यों हरबंस···अगर कहीं वह समुद्र में खो गया हो, तो···" श्यामलाल ने अपने मन की बात कही।

"समुद्र में लापता हुए लोग भी बरसों बाद लौटकर आए हैं···" हरबंस उन्हें समझाने लगा—"बहुत बार समुद्र में तूफान आ जाते हैं। जहाज टूट जाते हैं। मल्लाह समुद्र में खो जाते हैं···तैरते-भरते वे

अनजानी जगहों पर जा लगते हैं···पता नहीं कौन कहाँ पहुँच जाए···किसी किनारे या किसी टापू पर। मुसीबत के वक्त बड़ी हिम्मत आ जाती है आदमी में। मीलों तैरकर लोग कहीं अनजानी जगह में पहुंच जाते हैं। वहां से आने का जरिया नहीं मिलता···मैंने खुद पढ़ा था कि एक बार एक जहाज समुद्री तूफान में टूट गया था। दो बेसहारा मल्लाहों को समुद्र में कूदना पड़ा। हजारों मील तक सिर्फ पानी ही पानी···आदमी न आदमज़ाद ! कई दिन और कई रात दोनों मल्लाह तैरते रहे। यह भी उन्हें पता नहीं था कि धरती की तरफ जा रहे हैं या कहीं और···पर कई दिनों बाद वे एक टापू पर जा लगे। टापू में जंगली जानवरों के अलावा कोई नहीं था। इंसान का नाम तक नहीं। उन जंगलों में वे रहते रहे···कई बरस तक। वहीं जंगली फल और जानवरों को मार-मारकर अपना पेट भरते रहे। पत्तों और छालों के कपड़े पहनते रहे। दुनिया में वापस पहुँचने के लिए वे हमेशा टापू के किनारे खड़े होकर इन्तजार करते कि शायद कोई जहाज आसपास से गुज़रे···एक दिन बहुत दूर पर उन्हें जहाज दिखाई पड़ा···वे पागलों की तरह चीख-चीखकर और हाथ हिला-हिलाकर उसे बुलाते रहे पर जहाज़ के लोगों की नजर उनपर नहीं पड़ी। फिर बरसों उधर से कोई जहाज नहीं गुज़रा। जब भी उन्हें यह भ्रम होता कि कोई जहाज दूर-पास से जा रहा है तब वे चिल्ला-चिल्लाकर और हाथ हिला-हिलाकर उसको बुलाते···आखिर एक दिन किसी जहाज के कप्तान ने देखा कि मीलों दूर धरती के किसी टुकड़े पर कोई चीज ऐसे हिल रही है जैसे उन्हें बुला रही हो। इत्तफाक से कप्तान दूरबीन से देख रहा था, नहीं तो उसे कुछ भी दिखाई न देता···उसने फौरन जहाज को टापू की तरफ चलने का हुक्म दिया···और तब सात बरस बाद उन दोनों ने इंसान का मुंह देखा और वे उस दुनिया में लौटकर आए···आप ही बताइए, उनके घरवालों को भला कोई उम्मीद रह गई होगी?···और फिर यह तो तब की बात है जब समुद्र में जाना खतरे से खाली नहीं था। आज तो पूरे शहर के बराबर जहाज समुद्र में चलते हैं···सरकार को अगर पूरा यकीन हो गया होता कि कुछ गड़बड़ हो गई है तो वहां

से यह मत नहीं आता···"हरबंस ने विस्तार से बात कहकर जैसे उन्हें किसी निर्जन टापू से अपने जहाज पर चढ़ा लिया था। और वह उन्हें दुनिया में वापस ला रहा था।

जैसे सब समुद्र में खो गए थे और अब उन्हें जहाज मिल गया था···धीरे-धीरे वे दुनिया की तरफ लौट रहे थे।

"बम्बई जाकर कुछ पता लगाया जाए?" श्यामलाल ने पूछा।

"जरूर हो आइए!" हरबंस ने कहा—"यह सरकारी मामला है। सरकार भी पूरी खोजबीन में लगी होगी। बंगाल की खाड़ी से होकर जो भी जहाज जाता या आता होगा, उसे हुक्म होगा कि वह खोज करता हुआ जाए। सरकार खुद कोई कसर नहीं छोड़ेगी।"

"हो सकता है बीरन इस जहाज की नौकरी से घबरा गया हो और जान छुड़ाने के लिए वहीं उतर पड़ा हो···या···" रम्मी ने अपनी शंका आधी ही जाहिर की।

"क्या कहा जा सकता है!" श्यामलाल बोले।

"यह भी तो हो सकता है कि भैया किसी बन्दरगाह पर चीजें खरीदने-वरीदने चला गया हो···वहीं कोई एक्सीडेंट हो गया हो और जहाज तक न लौट पाया हो···" समीरा ने कहा।

"क्या हुआ है और क्या नहीं, यह तो धीरज धरकर पता लगाने से ही मालूम होगा! हम लोगों ने अपना दिमाग खराब कर लिया तो उससे क्या फायदा;···बगैर हौसले के कोई काम होता है!" हरबंस ने समझाया—"अब सब लोग उठो, हाथ-मुंह धोओ और कुछ खा-पी लो। इस तरह करने से क्या होगा।···समीरा, जाओ, तुम चाय बना लो···"

और फिर धीरे-धीरे स्टोव जला था। चाय बनी थी और सबने हाथों में चाय के गिलास थाम गए थे।

काटते रहे। सुबह निकलकर चले जाते और दिन-दिन भर कटीले तारों की बाड़ के बाहर पाकड़ के पेड़ों के नीचे बैठे रहते। जब भी दफ्तर में घुस पाते तो लोगों से मिल-मिलाकर पता करते। दफ्तर के एक अफसर ने उन्हें बताया भी था—"यह केस बम्बई से ही डील होगा। अगर आपको कोई खबर मिलेगी तो बम्बई से ही। हमारे पास कोई खबर आएगी तो आपको फौरन पता चलेगा।"

लेकिन उनका मन नहीं भरता था। गेट से नाविकों की वर्दी में जब कोई वीरेन्द्र के कद-काठी का नौसैनिक निकलता तब वह सिहर जाते···शायद वही हो···पहले यहां रिपोर्ट करने आया हो···और उन्हें हर नौसैनिक धीरे-धीरे उसी की शक्ल का लगने लगा था।

बम्बई दफ्तर से खत आने की प्रतीक्षा भी बराबर थी। वहां से कोई और खत तो नहीं आया, एक दिन सिविल पुलिस का इन्सपेक्टर आया। नौसेना ने वीरेन्द्र का मामला सिविल पुलिस के हाथों सौंप दिया था। बम्बई पुलिस ने दिल्ली पुलिस को तहकीकात करने के लिए लिखा था।

इन्सपेक्टर आया तो उसने उलटे-सीधे सवाल शुरू किए।

"कहां के रहनेवाले हैं आप?" उसने पूछा।

"इलाहाबाद, उत्तरप्रदेश!"

"आप क्या करते हैं?"

"कुछ नहीं!" श्यामलाल ने जवाब दिया।

"खर्चा कहां से चलता है?" इन्सपेक्टर ने पूछा।

"मेहनत-मजदूरी से···"

"दिल्ली शहर में क्या मेहनत-मजदूरी करते हैं आप?"

श्यामलाल झुंझला गए पुलिस को देखकर वैसे भी किसीको यह नहीं लगता कि वह मदद की नीयत से आई है। लगता यही है कि वह फंसाने के लिए आई है। श्यामलाल से जब नहीं रहा गया तब उन्होंने पूछ ही लिया—"इस जिरह का मकसद?"

"नेवीवालों का ख्याल है कि आपका लड़का नौकरी में से चुराकर यहीं भाग न आया हो···"

रिश्तों का अर्थ

एक-एक करके घर में सब काम होने लगे। पर कुछ ऐसे, जैसे कि सब कुछ दूसरों के लिए हो रहा हो। किसीका मन उस काम में न हो। किसी काम में रस न हो। खाने में स्वाद न हो। बात करने में अर्थ न हो।

वीरन के सकुशल लौट आने की प्रार्थना में घर के सभी लोगों ने उसकी पसन्द की चीज़ें खानी छोड़ दी थीं। रम्मी ने आंसू भरी आंखों से कहा था—"उसे मिठाई बहुत पसन्द थी···चुरा-चुराकर चीनी खाता था। हे भगवान्! आज से चीनी तुम्हारे अर्पण। मेरा वीरन जीता-जागता लौट आए तब तुम्हारी पूजा करके चीनी छुऊंगी। मेरी सुनना, हे प्रभो!"

और समीरा ने उर्द की दाल छोड़ दी थी। बगैर उर्द की दाल के वीरन भैया कौर नहीं उठाता था। श्यामलाल ने चाय पीना छोड़ दिया था। वीरन को बहुत पसन्द थी। दिन में दस बार मिल जाए तो कम। हर वक्त चाय के लिए समीरा से झगड़ता ही रहता था। चावल के लिए पानी चढ़ा है तो एक प्याला उसी में से बना दो···

"अब तो वह घर आएगा तभी चाय पिऊंगा!" कहते हुए श्यामलाल ने चाय का प्याला सामने से सरका दिया था।

बड़ी-बड़ी मन्नतें मानी गईं। रोज भगवान से विनती की गई और बराबर उसके आने की बाट जोही गई। क्या पता कब लौट आए? कहां से वापस आ जाए!

श्यामलाल पागलों की तरह दिल्ली में नौसेना दफ्तर के चक्कर

काटते रहे। सुबह निकलकर चले जाते और दिन-दिन भर कटीले तारों की बाड़ के बाहर पाकड़ के पेड़ों के नीचे बैठे रहते। जब भी दफ्तर में घुस पाते तो लोगों से मिल-मिलाकर पता करते। दफ्तर के एक अफसर ने उन्हें बताया भी था—"यह केस बम्बई से ही डील होगा। अगर आपको कोई खबर मिलेगी तो बम्बई से ही। हमारे पास कोई खबर आएगी तो आपको फौरन पता चलेगा।"

लेकिन उनका मन नहीं भरता था। गेट से नाविकों की वर्दी में जब कोई वीरेन के कद-काठी का नौसैनिक निकलता तब वह सिहर जाते···शायद वही हो···पहले यहाँ रिपोर्ट करने आया हो···और उन्हें हर नौसैनिक धीरे-धीरे उसी की शक्ल का लगने लगा था।

बम्बई दफ्तर से खत आने की प्रतीक्षा भी बराबर थी। वहाँ से कोई और खत तो नहीं आया, एक दिन सिविल पुलिस का इन्सपैक्टर आया। नौ सेना ने वीरेन्द्र का मामला सिविल पुलिस के हाथों सौंप दिया था। बम्बई पुलिस ने दिल्ली पुलिस को तहकीकात करने के लिए लिखा था।

इन्सपैक्टर आया तो उसने उलटे-सीधे सवाल शुरू किए।

"यहीं के रहनेवाले हैं आप ?" उसने पूछा।

"इलाहाबाद, उत्तरप्रदेश !"

"आप क्या करते है ?"

"कुछ नहीं !" श्यामलाल ने जवाब दिया।

"खर्चा कहाँ से चलता है ?" इन्सपैक्टर ने पूछा।

"मेहनत-मजदूरी से···"

"दिल्ली शहर में क्या मेहनत-मजदूरी करते हैं आप ?"

श्यामलाल झुंझला गए पुलिस को देखकर वैसे भी किसीको यह नहीं लगता कि वह मदद की नीयत से आई है। लगता यही है कि वह फँसाने के लिए आई है। श्यामलाल से जब नहीं रहा गया तब उन्होंने पूछ ही लिया—"इस जिरह का मकसद ?"

"नेवीवालों का ख्याल है कि आपका लड़का नौकरी से जो चुराकर यहाँ भाग न आया हो···"

"कैसी बातें करते हैं आप इन्सपैक्टर साहब ! अगर वह घर आ गया होता तो हमें रोने की क्या जरूरत थी···वो जीता-जागता लौट आए फिर चाहे आप लोग उसे जन्म कैद ही दे देते···"

"आपके और नजदीकी रिश्तेदार किन-किन शहरों में हैं ?" इन्सपैक्टर ने पूछा। सवालों के जवाब वह नोट करता जा रहा था। श्यामलाल चिढ़-चिढ़के जवाब देते जा रहे थे। पर कहीं मन में हल्की-सी आस थी कि शायद ये लोग ही कुछ अता-पता लगा लें।

"लड़के के दोस्त-अहबाब···कहाँ-कहाँ हैं ? क्या काम करते हैं ?" सब जवाब उसने नोट कर लिए।

"वीरेन्द्रनाथ का कहीं कोई इश्क-विश्क तो नहीं था ?" यह सवाल श्यामलाल बर्दाश्त नहीं कर पाए।

"आपको दूसरों की इज्जत और दिल की हालत का भी कुछ ख्याल होना चाहिए।" श्यामलाल ने नाराजी से कहा।

"आप तो साहब ख्वाहमख्वाह बुरा मान रहे हैं।" इन्सपैक्टर ने जरा नरमी से कहा—"तहकीकात में बड़े टेढ़े सवाल पूछने पड़ते हैं। माफ कीजिएगा, घर में वीरेन्द्रनाथ की माँ सगी है या सौतेली ?

"सगी हैं साहब !" श्यामलाल फिर झुंझलाए।

"हाँ···यह आपने नहीं बताया कि उसका कहीं कुछ चक्कर-वक्कर तो नहीं था ? मतलब किसी लड़की-वड़की से···और कभी ऐसा हुआ हो कि आप लोगों ने उस सिलसिले को मंजूर न किया हो···" इन्सपैक्टर ने संभलकर सवाल किया।

"जी नहीं, ऐसी कोई बात नहीं थी।"

उसके बाद भी वह इन्सपैक्टर तरह-तरह के सवाल करता रहा। उसने यह भी बताया कि इस तहकीकात में तीन-चार महीने जरूर लग जाएंगे, हर हफ्ते पुलिस आएगी और मालूम करेगी कि वह भागकर कहीं छिपा तो नहीं है।

· · · · · ·

पुलिस का यह चक्कर काफी दिनों चलता रहा। इसकी वजह से

श्यामलाल बम्बई भी नहीं आ पाए। सादी पोशाक में पुलिस के आदमी कभी-कभार गली में आते और वक्त-बेवक्त उनका दरवाजा खटखटाते, या ऊपर वाले लोगों से पूछते या पास-पड़ोस के लोगों से पता करते रहते कि उनके घर में बाहर से कोई नौजवान आदमी इन दिनों में तो नहीं आया है।

उस दिन सचमुच श्यामलाल को बड़ी तकलीफ हुई जब कोने के पान वाले ने उन्हें रोककर पूछा—"क्यों बाबू जी···आपका कोई लड़का फौज में था?"

"हां! क्यों?"

"कुछ नहीं···" पान वाले ने कहा—"वह शायद नौकरी से भाग आया है।"

"यह गलत है। तुमसे किसने कहा?" श्यामलाल ने पूछा।

"पुलिस के दीवान जी रोज दुकान पर आते हैं। उन्होंने ही बताया था। यह भी कहा था, 'नजर रखना···कहीं से कोई खबर मिले तो बताना···' शायद सरकार उसे कैद करना चाहती है···" पान वाला बोला।

"वह भागा नहीं है," श्यामलाल ने बेहद तकलीफ से कहा—"कहीं खो गया है। अरे भइया, हम तो खुद चाहते हैं कि वह जैसे भी हो लौट आए। हम अपने बच्चे का मुंह तो देख लें···छुट्टी लेकर आने वाला था···पता नहीं कहां समुद्र में खो गया। किस्मत हमारी···"

पान वाला उनके दुःख में दुःख प्रकट करने लगा—"बताइए भला···कौन यकीन करे पुलिस का···मामला कुछ और···और यह उल्टा फौस रहे हैं। बड़ा कमीना महकमा है बाबू जी···"

श्यामलाल ने नेवी दफ्तर में भी जाना छोड़ दिया था। अब वह पीपल के नीचे खड़े होकर बीरन का इन्तजार भी नहीं करते थे···पर मन बेतरह भटकता था, तो घर छोड़कर बाहर निकल आते थे। आर्य-समाज रोड से चलते तो बिरला मन्दिर जाकर घंटों प्रार्थना करते

हते। वहां से निकलकर पहाड़ी वाली सड़क पर चले जाते और कर रोड, राजेन्द्र नगर होते हुए फिर लौट आते। बिना किसी काम के वे देर-देर तक बस अड्डे पर खड़े रहते···तरह-तरह के ख्याल उनके मन में आते···

अच्छा होता उसे यहीं कहीं छोटी-मोटी नौकरी में डाल दिया होता। आंखों के सामने तो रहता···इस तरह उसका खो जाना उन्हें उस दिन तक भटकाता रहेगा, जब तक आंखें बन्द नहीं हो जातीं ···कहीं उनका दिन आ पहुँचा तो रम्मी और समीरा का क्या होगा? नह तो भीख मांगकर भी पेट नहीं भर पाएंगी···

सोचते-सोचते पूरा शहर धुंध में डूब जाता···वह अपार सागर में बदल जाता···भयंकर तूफान में पछाड़ें खाता हुआ हजारों-हजार मील तक फैला हुआ समुद्र···और उस समुद्र में डूबता हुआ एक जहाज़ ···एक अकेला जहाज! जहाज बुरी तरह घिर गया है और उसके हिस्से टूटते जा रहे हैं···एक बड़ी लहर अब उसे बीच से तोड़ने ही वाली है और उसके बाद जल समाधि!

सड़कों पर एक के बाद एक लहरें आती चली जा रही हैं··· आदमियों की लहरें···और वे इस जन-समुद्र में डूबते जा रहे हैं। छटपटाकर इधर-उधर हाथ-पैर मार रहे हैं, पर कोई सहारा नहीं मिलता। कोई किनारा दूर-दूर तक नजर नहीं आता···

हजारों···लाखों···करोड़ों की आबादी में वे बिल्कुल तनहा औ फालतू हो गए हैं···किसीको उनकी जरूरत नहीं···कोई ऐसा नहीं ज उनकी सुने। पति के रूप में—वे बस पति भर रह गए हैं—एक जबर्दस्त का बोझ, और पिता के रूप में—सिर्फ पिता कहे जाने भर का सव रह गया है। इन दोनों ही रिश्तों का कोई अर्थ उन्हें नहीं दिखाई रहा था। सदियों से आंसुओं, दया, मर्यादा, परिवार जैसी भावनाओं इन रिश्तों को जिन्दा रखने की कोशिश की है। कितने पति प न रह गए होते अगर बीच में आंसू न आए होते और शायद पिता नाम भर को पिता रह गए होते अगर परिवार ने उन्हें जीने का न दिया होता···

तरह-तरह के ख्याल उन्हें आ रहे थे—समीरा ने उन्हें जन्मदाता माना होता और उन्हें पिता न मानकर अगर वह अपनी जिन्दगी की राह खोज सकी होती तो शायद आज किसी लायक होती···आखिर वह पिता और पति के रूप में क्या दे पाए हैं उन्हें ? कुण्ठाएँ, वर्जनाएँ, रूढ़ियाँ और जिन्दगी का एक टूटा हुआ जहाज, जो किसी भी क्षण इन थपेड़ों में टुकड़े-टुकड़े हो सकता है।

कितना वीरान है यह जन-समुद्र ! वह फटी-फटी आँखों से सब कुछ देख रहे थे—ये कोलाहल से भरी सड़कें···आदमी पर जोता हुआ आदमी···ये कारें, बसें, मोटरें, और करते हुए स्कूटर···इमारतें और इमारतों में अपना खून चुसवाते हुए निरीह लोग···जिनके पास अपनी कोई जिन्दगी नहीं है। न अपनी आकांक्षाएँ···और न सपने। न अपने पंजे···और न अपनी आजादी ! धरती से आसमान तक एक लम्बी मीनार है, जिसके तल में करोड़ों, अरबों, खरबों आदमी दबे हैं और उनकी गर्दनों पर दूसरे सवार हैं—उन दूसरों पर तीसरे सवार हैं···उन तीसरों पर चौथे सवार हैं···और आसमान तक यही *सिलसिला चला गया है !*

···करोड़ों···अरबों की जिन्दा मीनार है और करोड़ों-अरबों पाताल पड़े हैं—अपने जख्मों को चाट-चाटकर प्यास बुझाते हुए···किसी के पास किसी के लिए वक्त नहीं है। किसी के पास किसी के लिए करुणा नहीं है···श्यामलाल का ध्यान तब टूटा जब पुलिसवाले ने सवाल किया—"कहाँ जाना है ?"

"कहीं नहीं।"

"किधर है घर तुम्हारा ?"

"यहीं पीछे गली में···"

"तो यहाँ क्या कर रहे हो···आधी रात में हवा खा रहे हो ! जाओ यहाँ से···"

वह चुपचाप गली में चले आए। घर में और भी ज्यादा सूनापन था। रम्मो बैठी रामायण की सगनौती निकाल रही थी। समीरा सो गई थी।

"कहाँ-कहाँ हो आए?" रम्मी ने उन्हें देखकर पूछा।

"कहीं नहीं···इधर-उधर घूमता रहा···" वह थके घुटनों पर हाथ रखकर खाट पर बैठ गए।

"अब यहाँ मन नहीं लगता···न हो; अपने शहर लौट चलें" रम्मी ने कहा।

"वहाँ क्या रखा है! अभी जाना ठीक भी नहीं होगा···"

"हाँ, शायद···"

"हरवंस आया था?" श्यामलाल ने सकुचाते हुए पूछा।

"नहीं।"

"सोचता हूँ, बम्बई हो आऊँ···अगर हरवंस रुपये का कुछ इन्तजाम कर दे तो ठीक है। बाद में चुका दूँगा।"

"पूछ देखूँगी।"

"रहने दो···वह मना कर देगा···"

"अच्छा!" गहरी साँस लेकर रम्मी ने रामायण बन्द कर दी। श्यामलाल चारपाई पर लेट गए। रम्मी वहीं नीचे चटाई पर लुढ़क गई। धीरे से बोली—"सुनो!"

"हाँ···"

"मेरे दिल में उसी रात सनाका हुआ था जब दरवाजे पर हवा ने दस्तक दी थी और कोई नहीं मिला था···"

"हाँ···पता नहीं क्यों, मुझे भी बड़ी परेशानी हुई थी···पर रम्मी, अब लगता है कुछ होनेवाला नहीं। जो हमारी इस फूटी किस्मत में बदा था, वह हो लिया है···"

"भगवान के लिए ऐसा मत सोचो···जरा-सी आहट होती है तो लगता है—वह आ गया। गली में कोई सवारी रुकती है तो लगता है कि वही है··· दरवाजे तक कोई आता है तो शक होता है कि कहीं वह ही न हो···मेरा मन कहता है··· बीरन के बाबू, मेरा मन कहता है··· वह आएगा···" कहते-कहते रम्मी सिसकने लगी।

श्यामलाल चुप हो गए। अब कोई किसीको रोने से रोकता भी नहीं था। ऐसा कोई भी हल किसी के पास नहीं था, जो दूसरे को

दिलासा दे सकता। जब जिसे रोना आता, जी भरकर रो लेता और थककर अपने आप चुप हो जाता। न कोई किसीको कुछ समझाता था। किसी के पास कुछ नहीं था। सिवा अपनी-अपनी ऐकांतिक मजबूरियों के! अपने-अपने टूटे-फूटे ख्यालों के। जो थोड़ा-बहुत पहले था भी, वह भी इस हादसे ने खत्म कर दिया था। अब सब निरीह और निरीह थे। लाचार और बेबस। एक-दूसरे को कुछ न दे सकने वाली सांस को लोथें!

सरकारी कामकाज जारी था। श्यामलाल के पास बाद में कुछ बनाएँ भी आईं थीं कि वीरन का कहीं कोई पता नहीं चला है। गापुर, मलाया, बर्मा और पूर्वी पाकिस्तान की सरकारों से भी पता गया गया पर उसका कोई सुराग नहीं मिला है।

सिविल पुलिस की तहकीकात की रिपोर्ट भी पहुँच गई थी। ऐसी सारी जगहें, जहाँ-जहाँ उसके भागकर जाने का अन्देशा हो सकता था, पता कर लिया गया है, वह कहीं नहीं पहुँचा है। बंगाल की खाड़ी से आने-जाने वाले जहाज़ों ने पूरी ज़िम्मेदारी से खोज-बीन की पर उन्हें भी कोई अता-पता नहीं मिला।

हरवंस पता करके आया था कि सरकार अब वीरन को मरा हुआ घोषित कर देना चाहती है। कोना-कोना छान मारा गया है···उसका कोई नामोनिशान नहीं मिला। आखिर कब तक सरकार परेशान होती रहेगी। वीरन के जहाज़ के कमांडर ने भी सरकार को यही राय दी थी कि अब उसे मृत घोषित कर दिया जाए। इसीलिए वीरन का सन्दूक और इस्तेमाल की कुछ चीज़ें दिल्ली भेज दी गई हैं कि उसके घरवाले उन्हें ले लें।

हरवंस ने यह ख़बर तारा को दी थी। तारा सहमी-सी सुनती रह गई थी। फिर बहुत सोचकर उसने हरवंस से कहा था—"परमात्मा के लिए यह खबर घर मत देना···नहीं तो बाबूजी और अम्मा का हार्टफेल हो जाएगा। वे ज़िन्दा नहीं रह पाएँगे।"

"लेकिन उन्हें यह ख़बर मिलेगी ही। मैं नहीं दूँगा तो सरकार देगी।" हरवंस ने उसे समझाया।

"जितने दिन और गुज़र जाएँ उतना ही अच्छा है। अभी अम्मा का

भरम बना हुआ है। शायद कुछ दिनों बाद खुद उनकी भी उम्मीद टूट जाए। तब वह इसे आसानी से बर्दाश्त कर लेंगी।"

"पर अब इसमें रखा क्या है…"

"कुछ भी न रखा हो…पर…"

"आखिर समझदार आदमी को सब कुछ बर्दाश्त करना ही पड़ता है। अब वीरन को ज़िन्दा तो नहीं किया जा सकता…" हरबंस बोला—"पता नहीं वह बेचारा कब और कहाँ समुद्र में गिर गया। हज़ारों मील की दूरी है। और पता नहीं जहाज़वालों को कब पता लगा कि वह जहाज़ पर नहीं है…ऊपर से रात का वक्त था…समुद्र के शोर में एक आदमी के गिर जाने का पता क्या लगता…" हरबंस कुछ सोचने लगा था, फिर उसने तारा की कमर पर धीरे से हाथ रख कर पूछा—"क्यों, कहीं ऐसी कोई बात तो नहीं कि वीरन ने खुदकुशी की हो…"

"ऐसा वह क्यों करता? कोई वजह मेरी समझ में नहीं आती… ऐसी कोई बात ही नहीं थी…कभी घर में कुछ हुआ ही नहीं…" तारा इस सवाल से घबरा गई थी।

"तो कोई लहर-वहर आई होगी, उसे खींच ले गई होगी… समुद्र में जानवर भी इतने होते हैं कि एक मिनट में साफ कर जाते हैं…" हरबंस ने कहा, तो तारा बोली—"पर तुम्हीं तो उस रोज़ कह रहे थे कि बरसों बाद तक लोग लौट आते हैं।"

"वह तो इत्तफाक की बात है। किसीकी किस्मत का क्या पता? जिनकी किस्मत रही होगी, वे लौटे होंगे…" हरबंस ने धीरे से समझाया।

"कोई कुछ कर भी तो नहीं सकता… ऐसी अन्धी चोरी है…" तारा बोली—"अम्मा-बाबूजी समझते होंगे कि हम लोग भी उनका पूरा साथ नहीं दे रहे हैं।"

"क्या किया जा सकता है? मैं बाबूजी के साथ दिन-दिन भर [illegible] ही भटक नहीं सकता। तुम्हारी हालत का उन्हें पता [illegible] [illegible] भी गलत समझें तो समझा करें…" हरबंस बोला।

"अब बेचारे गलत और सही समझ भी लेंगे तो उनका क्या होना । जो बदा था, वह हो लिया..."

"तुम बेकार रोक रही हो । मेरे ख्याल से तो उन्हें पूरी बात बता देना चाहिए ।" हरबंस ने कहा ।

"यह तुम मत करना...एक तो उनका दिल टूट जाएगा, दूसरे मैं नहीं चाहती कि यह खबर तुम उन्हें दो..." तारा ने उसकी आँखों में देखते हुए कहा ।

"ऐसी क्या बात है ?"

"तुम नहीं समझोगे । बस कह दिया । मान जाओ ।"

हरबंस असमंजस में हँस दिया । वह बात की गहराई ताड़ नहीं पाया था । धीरे से फिर वह बोला—"खैर, जो कुछ हुआ, बहुत बुरा हुआ...उनका तो सब मिसमार हो गया । अब क्या रह गया जिन्दगी में ! खर्चा-वर्चा भी अब कैसे चलेगा ? तुम कहो तो समीरा को दुकान पर लगा लूँ ।"

"मेरे ख्याल से यह ठीक नहीं होगा ।" एक क्षण रुककर तारा ने संशय भरे स्वर में कहा था ।

"क्यों ?"

"कुछ बातें तुम नहीं समझ सकते । इससे बेहतर है हम उनकी मदद पैसों से कर दिया करें..." तारा ने कहा था ।

"तुम भी अजीब गोरखधंधा हो !" चिड़चिड़ाते हुए हरबंस बोला था ।

"अब तो जो हूँ वह हूँ !" कहते हुए तारा ने बहुत प्यार से उसकी हथेली को अपने होंठों पर रखकर दबा लिया था ।

"अब तुम जल्दी फारिग होओ !" हरबंस ने हल्के-से चुटकी काटते हुए कहा था ।

"बेशरम कहीं के !" तारा ने तड़ाक से कहा था और अपनी दोनों आँखें ढँक ली थीं ।

घर में धीरे-धीरे आसरा टूटता जा रहा था। अंधेरे में खोज जारी थी या इन्तज़ार को ही खोज मान लिया गया था। सिर्फ इन्तज़ार... सब कुछ रुका हुआ था। सिर्फ इन्तज़ार में कि, कहीं किसी क्षण कुछ होगा, कुछ घटित होगा और इन्तज़ार ख़त्म हो जाएगा। सुबह से शाम और शाम से रात और रात से सुबह तक यही एक भावना हावी थी। जैसे जीने का और कोई मतलब नहीं रह गया है। बेहद बेबसी और मजबूरी में जीते चले जाने के अलावा कोई रास्ता नहीं रह गया है। मृत्यु का यही रूप उन्हें स्वीकार करना पड़ रहा है—जीते जी मरते जाना। निरन्तर मरते जाना। और इसी अनुभव के साथ कि इसके सिवा और कोई चारा नहीं है। श्यामलाल जब भी सोचते-यही बातें उभर आतीं—समीरा की शादी भी हो गई तो ? उससे क्या बदल जाएगा। उससे कौन-सी सार्थकता मिल जाएगी ? या उससे ज़िन्दगी का कौन-सा द्वार खुल जाएगा...

लगता था कि कुछ दिन जीने का सवाल इसीलिए है कि शायद बीरन लौट आए...नहीं तो अब रह क्या गया है ?

रम्मी बार-बार समीरा से वही कहानी सुनती जो हरबंस ने सुनाई थी। खाली बैठे-बैठे वह बिना किसी प्रसंग के पूछ बैठती—"क्यों समीरा...कितने बरस बाद मल्लाह लौटे थे ?"

और समीरा हरबंस की सुनाई कहानी को दोहरा देती। घर में अब खाने-पकाने का भी उत्साह नहीं रह गया था। श्यामलाल के छोड़ देने के कारण सुबह-शाम चाय भी नहीं बनती थी। कोई भी नहीं पीता था। उर्द की दाल भी नहीं पकती थी और चीनी की चीजें इस्तेमाल में नहीं आती थीं। सुबह-शाम ज़्यादातर मूंग की

पक जाती और एक थाली में तीनों जने खाकर पानी पी लेते।

श्यामलाल रोज सुबह उठकर तैयार होते। कपड़े पहनते, जूता बाँधते और हथेलियाँ सिर के नीचे रखकर खाट पर लेट जाते। रोज़ सुबह जब वह तैयार होते तो लगता कि शायद किसी काम पर जाएँ, पर वह निढाल होकर लेट जाते। कहीं भी, कोई भी काम नहीं था, जिसके लिए वह अपने को इस्तेमाल कर सकें। उनके हाड़-मांस और दिमाग की किसी को ज़रूरत नहीं थी। उनके दो हाथों की किसीको दरकार नहीं थी।

अपने होने और अपने शरीर के होने की इतनी गहन व्यर्थता को उन्होंने कभी महसूस नहीं किया था। एक ज़माना वह भी था जब अपने सिवा और सारे लोग उन्हें फालतू लगते थे···पर अब लगता था कि और सब लोग आवश्यक अंग हैं—फालतू सिर्फ वह हैं! उनका कोई मसरफ नहीं है। सुबह जब वह खाट पर उठकर बैठ जाते तो पहला सवाल यही आता—"क्यों? किसलिए वह उठकर बैठ गए हैं?" और उन्हें अपना आकार और अपना होना बहुत असंगत, बेबुनियाद और कुरूप लगने लगता। मंजन करने जाते तो लगता कि यह भी काहे के लिए···अपने हाथों को देखते—नीली-नीली नसों के ऊपर चढ़ी हुई खाल···तो मन में अजीब-सी बेबसी भर जाती। इन हाथों का क्या होना है? ये हाथ किसलिए हैं?

वह गुसलखाने में खड़े यही सोच रहे थे कि समीरा ने धीरे से कहा—"बाबू जी, इन्सपैक्टर साहब आए हैं।"

"हाथ पोंछते हुए वह निकल आए। चुपचाप इन्सपैक्टर के पास आकर बैठ गए। मन में अब कहीं कोई आसरा या उत्सुकता नहीं थी।

"कहिए, कुछ आपको पता चला?" इन्सपैक्टर ने पूछा।

"हमें क्या पता चलना था साहब···" श्यामलाल बोले।

"हमने रिपोर्ट भेज दी थी कि उसका कोई पता नहीं चला। वह भागकर यहाँ कहीं नहीं पहुँचा है। उसके दफ्तर वालों ने भी आसरा छोड़ दिया है, अब सारा मामला यहीं दिल्ली में आ गया है। सरकार सोचती है कि वीरेन्द्रनाथ को अब मरा हुआ मान लेना चाहिए। इस

सारे मामले को आखिर कब तक खींचा जा सकता है। अगर आपको एतराज न हो और मन गवाही दे तो आप यह भी लिख दीजिए कि सारी खोजबीन के बाद आप भी इसी नतीजे पर पहुंचे हैं कि वह मर गया है।...देखिए न, अब क्या रखा है झूठे आसरे में ! इससे आपकी तकलीफ भी रफा नहीं होगी और सिरदर्द ज्यों का त्यों बना रहेगा। आपके लिख देने से हमें आसानी होगी...। हम खानापूरी कर ही देंगे अपनी तरफ से पर आपके कहने से बात खत्म हो जाएगी !" सब बातें तफसील से बताकर इन्सपैक्टर उनकी तरफ देखने लगा।

कुछ क्षणों तक श्यामलाल सोचते रहे। वह कुछ भी तय नहीं कर पा रहे थे। इन्सपैक्टर ने फिर धीरे से पूछा—"क्या ख्याल है आपका ?"

"मैं जरा पूछकर बताऊं..."उन्होंने लाचार नजरों से उसकी तरफ देखा।

"हां-हां, पूछ लीजिए" एक मर्तबा आप यह मंजूर कर लेंगे कि आपका बेटा मर गया है तो दिल पर से बोझ उतर जाएगा। जहां तक ढूंढने का सवाल है उसमें कोई कसर नहीं छोड़ी गई है, इतना यकीन तो आप कर ही सकते हैं।"

श्यामलाल से उठते नहीं बन रहा था। तो मौत को स्वीकार ही करना होगा ? कितना मुश्किल काम उन्हें वक्त ने सौंप दिया था। रम्मी के पास जाकर यह सब कहने और उसकी मंजूरी लेने की हिम्मत नहीं हो रही थी। मन में कहीं यह था कि मौत सामने है... मौत पूरी तरह मौजूद है पर उसे मंजूर कर सकने की ताकत मन में नहीं थी।

उनके पैर धरती में समा गए थे। चलते ही नहीं थे। बहुत ताकत बटोरकर वह मौत की मंजूरी लेने के लिए रसोईघर तक पहुंचे।

"क्या कहते हैं इन्सपैक्टर साहब ?" रम्मी जल्दी से जानना चाहती थी।

"कुछ नहीं...उतना ही जितना हम कह सकते हैं..."

"काहे के लिए आए हैं ?"

"हमसे पूछने कि हम लोगों का क्या ख्याल है ?"

"हम क्या कह सकते हैं !" रम्मी ने भरे हुए स्वर में कहा।

"वह हमारी मंजूरी चाहते हैं !" श्यामलाल बोले।

"किस बात की···" डरी हुई नज़रों से देखते हुए रम्मी ने पूछा।

"मौत की !"

सुनते ही रम्मी दाढ़ मारकर रो पड़ी थी। समीरा भी अपने को नहीं रोक पाई थी। रोने की आवाजें ऊंची उठने लगीं। रोने की आवाज़ें सुनते ही सामनेवाली दीवार पर तमाम परछाइयां इकट्ठी हो गई थीं—हल्की-हल्की हरकत करती हुई परछाइयां।

सारा वातावरण अवसाद से भर गया था। इन्सपैक्टर भी भीतर ही भीतर दहल गया था। श्यामलाल अपनी आंखें पोंछते हुए फिर उसके सामने जा बैठे थे। इन्सपैक्टर ने उनके कंधे पर हाथ रख दिया था, जैसे वह उन्हें सहारा और दिलासा देने की कोशिश कर रहा हो। पर शब्द उसके पास भी नहीं थे।

सब जानते थे कि सबसे बड़ा दिलासा मौत को मंजूर कर लेना ही था···पर मौत को नामंज़ूर करते जाना ही उनके लिए जीते जाने का बहाना बन सकता था।

"आप लोगों की तकलीफ से मुझे भी बहुत दुःख हो रहा है !" इन्सपैक्टर ने धीरे से कहा, "जाने दीजिए···जो कुछ होगा हम कर लेंगे। मेरे लायक और कोई काम कभी हो तो बताइएगा।" कहकर उसने अपनी आंखों की कोर को पोंछा और जाने लगा।

चलते-चलते इतना और बोला था—"कभी मिलिएगा···" और वह भारी कदमों से बाहर चला गया।

रोने की ऊंची आवाजें थम गई थीं। घुटी-घुटी सिसकियों और आंसुओं से बोझिल सांसों का शोर अब भी बाकी था। और वे तीनों फिर अलग-अलग अपने-अपने दुःख में अकेले कैद हो गए थे।

फाइलें निपट गईं

पास-पड़ोस वालों ने वीरन की मौत को पहले दिन ही मंजूर कर लिया था, इसलिए वे अब दिखावे के लिए भी दुःखी नहीं थे। दुःखी सिर्फ वे थे, जो मौत को मंजूर नहीं कर पाए थे।

पुलिस भी चाहती थी कि इस किस्से को बन्द कर दिया जाए। इसमें अब जान नहीं थी। अगर यह किस्सा बन्द नहीं होता तो पुरानी चोट की तरह वीरन के जिन्दा होने की बात बार-बार उभरती रहेगी। पुलिस को बार-बार खानापूरी करनी पड़ेगी। पुलिस इस भाग-दौड़ और परेशानी से बचना चाहती थी।

नौसेना दफ्तर भी यही चाहता था। आखिर एक खोए हुए आदमी को लेकर किस हद तक परेशान हुआ जा सकता था। इन्सपैक्टर ने जो कुछ कहा था, वह जब हरवंस को पता चला तब उसने भी यही राय दी कि इस सिलसिले को अब खत्म कर दिया जाए'''इसमें कुछ रखा नहीं है।

पर'''यह बात मान ली जाए, यह कहने का साहस श्यामलाल को नहीं होता था। रम्मी की तरफ वह देखते तो चुप रह जाते। और रम्मी समीरा को किसी बात के बीच में टोककर पूछती—"वे मल्लाह तैरकर टापू पर पहुँच गए थे न ?"

'''रम्मी बहुत खटके की नींद सोती थी। उसे लगता था कि दुनिया का हर रास्ता घर की तरफ आता है। और वीरन कभी भी, किसी भी रास्ते से आ सकता है। पता नहीं वह भटकता हुआ किस हाल में आ जाए'''कभी-कभी तो वह उसकी आवाज तक सुन लेती और उसे

में बैठा हुआ देख लेती। तब आधी रात को हड़बड़ाकर जाग
और रोते-रोते फिर सो जाती।
कई बार उसने समुद्र देखा और देखा कि वीरन जहाज पर खड़ा है।
हाथ हिला रहा है…और जहाज़ दूर होता जा रहा है…फिर वह
खों से ओझल हो गया।

आखिर बहुत सोच-समझकर एक दिन श्यामलाल ने कहा—
रम्मी, अब आसरा करने से कोई फायदा नहीं…"

रम्मी चुपचाप सुनती रही।

"सरकार भी चाहती है कि अब आसरा छोड़ दें। तुम कहो तो
मैं उसका सामान वगैरह ले आऊँ…श्यामलाल भारी दिल से बोले थे।

"परमात्मा के लिए ऐसा मत कहो! तुम जाकर अफसरों से
मिलो। उनसे विनती करो। ऐसा न करें। फिर वे उसे ढूंढ़ना भी
बन्द कर देंगे…" रम्मी रुआँसी हो आई थी।

"ठीक है…" श्यामलाल ने कहा।

"तुम यह मत होने दो! उनसे कहना, कुछ दिन और देख लें…
शायद हमारा भाग्य जोर मारे…परमात्मा के लिए उनसे जाकर
कहो कि कुछ दिन और इन्तजार कर लें…वीरन के बाबू! अगर
यह हुआ तो मैं मर जाऊँगी। मैं तुम्हारे पैर पड़ती हूँ! वीरन नहीं
रहा यह सरकारी ऐलान मत होने दो…नहीं तो सब खत्म हो
जाएगा…सब खत्म हो जाएगा!" रम्मी ने रोते-रोते उनके पैरों पर
हाथ रख दिया था।

तारा के लड़की हुई थी। हरबंस इसलिए उधर नहीं आ पाया
था। श्यामलाल उससे राय-मशविरा भी नहीं कर पाए थे। पर उन्हें
भी कहीं मन में महसूस होता था कि ऐलान होते ही सब खत्म हो
जाएगा।

वह जाकर पुलिस इन्सपैक्टर से मिले और पुलिस इन्सपैक्टर
उन्हें नौसेना के सम्बन्धित अधिकारी से मिला दिया। अधिकारी

उन्हें बहुत समझाया कि अब इसमें कुछ रखा नहीं है पर लड़के की माँ का वास्ता देकर उन्होंने अधिकारी को समझा लिया था।

वीरन की खोज का सारा मामला वहीं अटक गया था। पुलिस अपना काम खत्म कर चुकी थी। नौसेना के अधिकारी ने फाइलें हटा दीं। ऐलान नहीं किया गया। सारा मामला जहाँ का तहाँ रोककर सरकारी मशीन दूसरे अहम कामों में उलझ गई।

मकान-मालिक ने इतनी ही मेहरबानी की थी कि वह दो महीने चुप बैठा रहा था। किराया तो पिछला भी बाकी था और इधर का भी चढ़ गया था। घर की चीज़ें धीरे-धीरे उठती गई थीं। जब बहुत ज़रूरत पड़ती तब रम्मो चुपके से समीरा को घर का कोई बर्तन या अन्य कोई चीज़ देकर गिरवी रखनेवाले सरदार के यहाँ भगा देती। सरदार छोटी-मोटी चीज़ें रखकर दो-चार रुपये दे देता।

"इस पतीली का करूँगा क्या !···ख़ैर, तुम ले जाओ तीन रुपये !" कहकर जब वह समीरा की हथेली में तीन रुपये थमाता तो गौर से उसे देखता। समीरा नज़रें नीची किए खड़ी रहती। सरदार को देखने की उसकी हिम्मत नहीं पड़ती थी।

कभी-कभी सरदार अपने पैसे उगाहने के बहाने घर का चक्कर भी काट जाता और रम्मो की तकलीफ़ सुन-सुनकर सहानुभूति प्रकट करता। उसने यह भी कहा था कि सिंगापुर में उसका चचेरा भाई है, वह उसे ख़त लिखेगा कि वहाँ से कुछ पता करे···

रम्मो उसकी बात के खोखलेपन को समझती थी, पर काटना ठीक नहीं था। आख़िर वह सरदार वक्त-बेवक्त का सहारा था।

मकान-मालिक ने तगादा करना शुरू कर दिया था। एक दिन उसने राय भी दी—"श्यामलाल जी···आपको अपने शहर लौट जाना चाहिए···वहाँ मकान है···चार काम भी निकल आएँगे !"

पर श्यामलाल जानते थे कि उनका कोई मकान नहीं है। एक बार जब किराया चढ़ गया था और मकान-मालिक ने बहुत इज़्ज़त

और बेइज्जती की थी तो बात-बात में वह मकान-मालिक पर रोब जमाने के लिए कभी कह गए थे। वह लौटकर जाते भी कहाँ !

किराया न चुका पाने के कारण श्यामलाल ने एक कमरा खाली कर दिया था। उसमें नये किरायेदार दूसरे ही दिन आ गए थे। समीरा का कोना भी छिन गया था, जहाँ बैठकर वह सामनेवाली सफेद दीवार की परछाइयाँ देखा करती थी।

नये किरायेदार के आते ही घर में बड़ी परेशानी शुरू हो गई थी। बात-बात में तकलीफ होने लगी थी। श्यामलाल के घर में तो वैसे भी मातम जैसा छाया रहता था। नये किरायेदार की पत्नी ने जब एक दिन अपने पति से कहा—"यहाँ हर वक्त रोना-धोना मचा रहता है···कहाँ लाके डाल दिया है।" तो रम्मी और समीरा ने अपने को और भी संभाला था। अब वे खुल के दुःख-सुख भी प्रकट कर नहीं पाती थीं। घर में कोई आता तो दिल धड़कने लगता कि पता नहीं कौन आ गया है। श्यामलाल ने जगह-जगह से कर्जा ले रखा था और वे लोग आकर उन्हें बेइज्जत कर जाते थे।

श्यामलाल बहुत निरीह हो गए थे। एकाएक वह बहुत बूढ़े लगने लगे थे। एक शाम जब हलवाई ने उन्हें रुपये लौटाने के लिए बहुत बेइज्जत कर दिया तब वह हाथ जोड़कर खड़े हो गए थे—"मैं तुम्हारा पैसा-पैसा चुका दूँगा···थोड़ी मोहलत और दे दो···!"

हलवाई ने अपना तहमद कसकर बगल वाले कमरे में झाँका था। श्यामलाल नहीं समझ पाए कि उसके मन में क्या है। हलवाई ने नये किरायेदार को पुकारा—"बाबू जी, जरा सुनिए !"

नये किरायेदार मिगलानी खट से बाहर निकल आए। हलवाई ने इधर-उधर की एकाध बात करके उनसे जान-पहचान कर ली और उन्हें लेकर दरवाजे के पास चला गया था। उनकी बातें सुनने के लिए श्यामलाल बाथरूम में घुस गए थे।

हलवाई ने कहा—"अब ये लोग भागने वाले हैं। सिर से एड़ी

तक कर्ज में डूबे हुए हैं ! मुझे दो सौ लेना है। आप नजर रखिएगा। अगर भागने-भूगने लगें तो जरा खबर कर दीजिएगा…पीछे वाली सड़क पर दुकान है अपनी !"

"मकान-मालिक भी इन्हें निकालना चाहता है ! उसने मुझसे दोनों कमरों का वादा किया है। साल डेढ़ साल का किराया बाकी है पता नहीं यह आदमी करता क्या है…" मिगलानी बोला था—"आपकी दूकान पर दूध तो होता होगा ?"

"हां-हां…मंगवा लीजिएगा।…यह आदमी भाग न जाए ख्याल रखिएगा !"

"हम खबर कर देंगे !"

"बड़ी मेहरबानी होगी।" कहकर हलवाई चला गया।

मिगलानी लौटा तो श्यामलाल के हिस्से की तरफ ऐसे देख रहा था जैसे उन्हें उसीका कर्जा देना हो। उसकी आंखों में हिकारत थी। उस दिन से उसकी बीवी ने और ज्यादा बुदबुदाना शुरू कर दिया था। रम्मी और समीरा का कमरे के बाहर निकलकर बैठना मुहाल हो गया था। वे चोरों की तरह कमरे में घुसी रहती थीं। मकान-मालिक जब-तब मिगलानी के यहां आता रहता और उनके कमरे में रंग-रोगन करवा गया था। बड़ी खिड़की पर जाली लगवा गया था। श्यामलाल वाले कमरे से जैसे उसे कोई मतलब न हो। समीरा, रम्मी और श्यामलाल भी उसके इस व्यवहार से बहुत छोटा महसूस करते थे। मिगलानी के यहां बैठकर मकान-मालिक चाय-वाय पीता और इधर-उधर की बातें करके लौट जाता।

जब से मकान-मालिक ने श्यामलाल से बोलना बन्द किया था, तब से उन्हें शक होने लगा था कि उसने मुकदमा कर दिया है और नोटिस किसी भी दिन आ सकता है।

तीनों जन और ज्यादा खामोश होते जा रहे थे। रम्मी बहुत परेशान थी। श्यामलाल हमेशा की तरह रोज सुबह उठकर तैयार होते। सूट पहनते, टाई बांधते, जूता-मोजा पहनते और खाट पर लेट जाते।

पड़े-पड़े छत की ओर ताकते रहते, फिर सो जाते। जब तक वह सोते रहते, रम्मी और समीरा रसोई में बैठी रहतीं। जब वह उठकर चले जाते तो कमरे में घुस जातीं।

बाहर कोई भी आहट होती तो उनका दिल धड़कने लगता। वीरन की आहट का आसरा नहीं रह गया था···अब तो यही लगता था कि कोई पैसा मांगने वाला न हो। आदमी की शक्ल तक से दोनों को दहशत होने लगी थी। श्यामलाल धीरे-धीरे पुख्ता और बेशर्म होते जा रहे थे। एक दिन वह बिगड़ ही पड़े थे—"ब्याज देता हूँ! कोई मुफ्त में पैसा नहीं लिया है। जब होगा तब पहुंच जाएगा···"

रम्मी बार-बार यही सोच रही थी कि समीरा का कुछ और इन्तज़ाम कर दिया जाए। ऐसे घर में जवान बेटी का रहना बहुत खतरनाक था। पता नहीं वह कैसे घर चला रही थी। रात होते ही वह अजमल खाँ रोड पर जाती और बची हुई सस्ती सब्जी में से कुछ खरीद लाती। आटा गूंथकर रोटियां बना लेती और उस एक सब्जी से तीनों खाकर खूब पानी पी लेते। कभी एकाध रोटियां बच जातीं तो रम्मी उन्हें कपड़े में लपेटकर तकिये के नीचे दबा लेती। मुलायम भी रहती थी और बिल्ली से भी बच जाती थी। रसोईघर का दरवाजा टूट गया था। मकान-मालिक से कहा भी नहीं जा सकता था।

रम्मी ने सोचा था कि तारा की मदद करने के बहाने वह कुछ दिनों के लिए समीरा को उसके पास भेज दे, पर उसके घर में हरवंस की बहन आ गई थी। वहां गुन्जाइश नहीं रह गई थी।

गुजरती रेलगाड़ियाँ

इधर-उधर दौड़-भाग करते-करते श्यामलाल को नजफगढ़ रोड की एक फैक्टरी में दरबान की नौकरी मिल गई थी। जिसने नौकरी दिलवाई थी उसने पचहत्तर रुपये में से पन्द्रह रुपये माहवार अपने लिए तय कर लिए थे। इसी शर्त पर 'इतने बूढ़े और कमज़ोर आदमी' को नौकरी मिली थी। श्यामलाल अब रात को घर भी नहीं रहते थे। उन्हें रात की पाली पर ही जाना होता। शाम होते ही वह घर से चल देते। कुछ देर अजमल खाँ रोड की रौनक देखते या आर्यसमाज मंदिर में हो रहे किसी प्रवचन को दस-पन्द्रह मिनट सुनते। फिर आर्यसमाज रोड से होते हुए थाना करोलबागवाली सड़क पर मुड़ जाते।...थाने के बाहर एक मिनट रुककर वह देखते, शायद इन्सपेक्टर दिखाई दे जाए। वह कभी दिखाई नहीं दिया। कभी-कभार थाने में भीड़ होती। पुलिसवाले साइकिल से आते-जाते रहते। एकाध मुजरिम बेबस-सा बैठा होता या कोई औरत हवालात में बन्द अपने आदमी से मिलने के लिए मिन्नत कर रही होती।

गन्दे नाले के उस पार बने गिरजाघर को देखकर उन्हें बड़ी राहत-सी मिलती। उन्होंने कभी रिहायशी बस्ती में गिरजाघर नहीं देखा था। और न गिरजाघर की दीवारें घरों की दीवारों पर इस तरह सधी हुई देखी थीं। लगता था वह गिरजाघर वहाँ रहनेवाले लोगों के आसरे खड़ा हुआ है। उसकी कत्थई दीवारों को देखते हुए वह आगे बढ़ जाते। दुकानें बन्द होतीं पर जो आदमी भी दिखाई देता वह या तो काम में लगा हुआ होता या गप्प-गप्पियों में मशगूल होता। कोई भी ऐसा नहीं दिखा जो परेशानी की हालत में चीख-पुकार रहा हो। लगता यही कि उनके अलावा बाकी दुनिया बहुत खुश है। बहुत

बेफिक्र और मस्त है।

जब रात उतरने को होती तब उन्हें वह सीधी सड़क बहुत अच्छी लगती थी। दूर पहाड़ी पर बस्ती की रोशनियां झिलमिलाती होतीं और सड़क पतली होकर पहाड़ी पर चढ़ती चली जाती। खालसा कालेज के पास कभी-कभी मेहंदी महकती थी। सुगंध का झोंका आ जाता तो वह बेसुध-से खड़े हो जाते। वहां हर वक्त दो-तीन बसें खड़ी होतीं। तांगेवाले सदर-बाराटूटी के लिए सवारियां बुला रहे होते।

बहुत आराम-आराम से वह पहाड़ी के पास तक पहुंचते, वहां से दाहिने मुड़कर सराय रोहिला की ओर चल देते। रेलवे लाइन के फाटकों पर वह जरूर रुकते। आती और जाती गाड़ियां देखकर उन्हें वही सन्तोष मिलता जो कभी बचपन में होता था। वहीं गुमटीवाले के पास बैठकर वह सुस्ताते थे और इधर-उधर की गप्प लगाकर आगे बढ़ जाते थे।

फैक्टरियों के लम्बे अहाते शुरू होते ही सड़क बहुत वीरान लगने लगती थी। फैक्टरियों की अपनी बस्तियां थीं, पर वे दीवारों के अन्दर थीं। कंक्रीट बनानेवाली मशीनें दिन-रात चलती रहतीं। फैक्टरियों से धुआं उठता रहता और इंजनों की घड़घड़ाहट भी सुनाई पड़ती रहती।

दो-ढाई घण्टे में वह आराम से रुकते-बैठते अपनी फैक्टरी के फाटक पर पहुंच जाते। फाटक पुराना था। वह टेढ़ा हो चुका था। उसी की खिड़की के बाहर स्टूल पर वह बैठते थे। पहले वह फाटक से घुसकर भीतर के ऊबड़-खाबड़ रास्ते को पार करके रात पाली के मैनेजर को सलाम करते, फिर इधर-उधर दहकती भट्ठियों की रोशनी में एकाध परिचित मजदूरों से दुआ-सलाम होती, उसके बाद वह फाटक पर आ जाते। उनकी फैक्टरी में बेल्चे और फावड़े बनते थे। ऊबड़-खाबड़ जमीन में ही टिनशेड डालकर काम करने की जगहें बना ली गई थीं। बाकी खाली जमीन पर जंग खाई लोहे की चादरें और चादरों की छीलन पड़ी रहती थी। जगह-जगह पत्थर के कोयले के ढेर पड़े थे।

फाटक पर बैठे-बैठे मन ऊबता तो वह अंधेरे में ही भीतर चले जाते।

क्टरी में शोर होता। बड़ी भट्ठी में लोहे की चादरें गर्म की जाती ी। जब चादरें अंगारों की तरह लाल हो जाती तब डाई मशीनों दबाकर उन्हें फावड़े की शक्ल दे दी जाती। डाई मशीन के हत्थे को माने के लिए चार मजदूर लगे रहते थे और वे कोल्हू के बैल की तरह घूमते और लौटते रहते थे।

हर तरफ लोहा जलने की भारी-भारी-सी महक भरी रहती। ात भर भट्ठियाँ दहकती रहती। चादरों के टुकड़े मजदूर लाद-लाद- र फेंकते रहते। फाटक के भीतर अँधेरी रात में ऐसा लगता जैसे कसी वीराने में फौज का मोर्चा हो'''भट्ठियों की रोशनी में नंगे बदन ज़दूरों के शरीर या चेहरे शैतानों की तरह चमकते थे। कभी कोई जदूर थक कर वहीं लोहे की चादरों पर लेट जाता'' पूरी फैक्टरी में चीस-पचीस पावर के सात बल्ब थे जिनकी रोशनी वहीं अपने दायरे मुरझा जाती थी।

दो-तीन मजदूरों का गोल कभी रात में ही ऊबड़-खाबड़ परती और ाड़ियों को पार करके किसी समतल टुकड़े पर बैठ जाना और दारू ीकर तान छेड़ना'

फाटक के बाहर चायवाले की गुमटी थी। वह ग्यारह-बारह बजे क बन्द करके चला जाता। उसने कच्ची का धन्धा खोल रखा था। ूसरी मिलों या फैक्टरियों के मजदूर या स्कूटरवाले उसके पास आते हते थे। पुलिस का सिपाही भी गश्त के लिए आता। सब वहीं बैठे हते और पीना-पिलाना चलता रहता। एक रात कुछ मजदूर एक ौरत पकड़ लाए थे। पीने के बाद उनमें झगड़ा हुआ था फिर रफा-दफा ो गया था और वे वहीं दीवार के सहारे जहाँ गन्दा तालाब पूरी तरह हकता था' 'जिसमें सुअर घुसे रहते थे, लोग हँसते-खिलखिलाते, और ालियाँ बकते थे।

सुबह दो-तीन बजे के करीब बादली की तरफ जो कूड़े की रेल-गाड़ी जाती थी, उसकी दुर्गन्ध से पूरा इलाका भर जाता था। श्यामलाल को आवाज से ही पता चल जाता था कि अब कूड़ा गाड़ी जा रही है। वह गाड़ी बहुत ज्यादा शोर करती थी और धमती-धमती चला करती थी। उसका इंजन लगातार सीटी देता हुआ गुजरता था। दिल्ली के कूड़े से भरे डिब्बे चिचियाते हुए और पटरियों पर रगड़ खाते ढुलकते चले जाते थे।

दूसरे-चौथे दिन रेलगाड़ी की पटरी पर या कहीं और कोई लाश बरामद होती ही रहती थी। जब भी कोई ऐसी वारदात होती दरबानों-चौकीदारों की पेशी होती थी। श्यामलाल को इससे बहुत घबराहट होती थी। लगभग रोज-रोज हत्या या दुर्घटना देखते-देखते उनके दिल में अजीब-सा विराग पैदा हो गया था। मौत के प्रति जो दहशत थी, वह खो गई थी।

पूरी रात वह जागकर काटते। अब उन्हें नींद भी नहीं आती थी। चारों तरफ अंधेरा होता। आदमियों के होने का अहसास भर होता। कभी-कभी सड़क से कोई माल भरा ट्रक गुजर जाता था या थके-हारे मजदूर गुजर जाते। कभी किसी फैक्टरी में कोई दुर्घटना हो जाती तो घण्टी बजने लगती...कुछ मिनटों के लिए भाग-दौड़ होती फिर सब शांत हो जाता।

वहां की सब आवाजें उनके कानों में बस गई थीं। कोने वाली फैक्टरी का बायलर जब स्टीम छोड़ता तो पहले वे चौंक जाते थे। पर अब उन्हें उस आवाज का इन्तजार रहता। यह आवाज उन्हें सूनी रात और अंधेरे में जिन्दगी से जोड़ती थी। गाड़ियां गुजरतीं, तो उन्हें बड़ा सहारा मिलता। लगता, कुछ हो रहा है। आवाजों से ही उनका वक्त कटता था। नहीं तो फाटक पर अकेले बैठे-बैठे घबराहट होने लगती थी।

रात में जब कभी माल लदता तो श्यामलाल का काम बढ़ जाता। कहीं कोई मजदूर अंधेरे में कोई चीज बाहर न पहुंचा आए या ट्रक पर बारह सौ की जगह ज्यादा नग न चले जाएं। गिनती के लिए उन्हें ही

खड़ा किया जाता था।

ट्रक का क्लीनर हमेशा उनसे पूछता—"कुछ है ?"

पहले तो वह बात नहीं समझे थे। जब समझ गए थे तब क्लीनर ने कहा था—"यार, धन्धा चल सकता है यहाँ...तुम बोड़म हो !"

श्यामलाल को यह भी पता नहीं था कि पचास-साठ नग कम गिनने का पैसा मिलता है। सौ-दो सौ कम गिन देने का और पैसा मिलता है। ज्यादा से ज्यादा यही होता है कि डाईवालों की मुसीबत आ जाती है। वह भी तब, जब पूरा सामान तैयार नहीं होता, नहीं तो मालिक को यह अंदाज भी नहीं होता कि दो-चार सौ नग ज्यादा उठ गए हैं।

गिनती में माल कम बचता तो डाईवालों का मेहनताना कट जाता, नहीं तो महीनों पता ही नहीं चलता था।

ज़िन्दगी का मुआवज़ा

रात-रात भर श्यामलाल बाहर रहते तो रम्मी और समीरा बहुत बेसहारा महसूस करने लगी थीं। थके-हारे वह नौ-दस बजे सवेरे लौटते और खाट पर पड़कर सो जाते। कई बार रम्मी ने कहा भी—"न हो तो उधर ही कोई कमरा देख लो। सस्ता भी मिल जाएगा और तुम्हारी इतनी दूर आने-जाने की परेशानी भी बच जाएगी।"

"वहाँ झुग्गियाँ मिल सकती हैं। ज़मीन तो सरकारी है पर ज़ोर-ज़बरदस्ती कुछ लोगों ने कब्ज़ा कर रखा है। एक ठेकेदार भी बन गए हैं। वह माहवारी पर ज़मीन दे देते हैं···पर भरोसा कुछ भी नहीं। किसी दिन सरकारी आदमी आ गए तो भागना पड़ेगा···" श्यामलाल ने समझाया।

"जब ठेकेदार पैसा लेता है तो भागना क्यों पड़ेगा?"

"वे ज़ोर-ज़बरदस्ती के ठेकेदार बन बैठे हैं। उसी तरफ के बद-माश लोग हैं···" श्यामलाल बोले।

"फिर बेकार है!" रम्मी ने समीरा का ख्याल करके कहा।

श्यामलाल भी घर दूर ही चाहते थे। पर यह कमरा अब बहुत भारी पड़ रहा था। मकान-मालिक आँखें दिखाने लगा था। आखिर हरबंस ने मकान के मामले को अपने हाथ में ले लिया था।

"छह महीने से ज्यादा का आप वसूल नहीं कर सकते!" हरबंस ने मकान-मालिक से कहा था—"अगर आपने ज्यादा परेशान किया तो मैं इन लोगों को यहाँ से हटाकर, पगड़ी लेकर, ऐसे आदमी को बसा दूँगा जो आपकी आफत कर देगा।···"

मकान-मालिक एकाएक सकपका गया था—"मुझे अपना पैसा चाहिए···आप रहिए···मुझे क्या···" मकान-मालिक बोला था।

हरबंस ने पिछले बकाया किराये की रकम तय करके, अगले महीने से नगद माहवार देने की बात तय करा दी। पिछली रकम में से दस रुपये माहवार चुकता होता जाएगा, यह भी मंजूर करा दिया।

दूसरे दिन हरबंस तारा को लेकर आया और उसने तीनों को पास बैठाकर पूछा—"आप लोग अब क्या सोच रहे हैं ?"

"किस मामले में ?" श्यामलाल बोले।

"यही कि किस तरह यह घर चलेगा···जिस हालत में आप लोग हैं, मुझसे नहीं देखा जाता। जिन्दगी इस तरह चलेगी नहीं। नौकरी आपकी आज है, कल का क्या ठिकाना···सामने यह है।" हरबंस ने समीरा की तरफ इशारा किया।

"हमारी समझ में कुछ नहीं आता। जो कुछ करते बन रहा है, कर रहा हूँ···" श्यामलाल मायूसी से बोले।

"मेरी बात आप लोगों को शायद पसन्द न आए···शायद तकलीफ भी दे, पर सोच देखिए···" हरबंस ने कहते हुए तारा की तरफ देखा। तारा ने विरोध नहीं किया तो वह कहता गया—"अब बीरन का आसरा छोड़िए।" वह सबके चेहरों की तरफ देखने लगा।

रश्मी कहीं नहीं देख रही थी। तारा बच्ची के मुंह में दूध देने लगी थी। समीरा बाहर गली में देख रही थी—ममता की खिड़की की ओर, जो महीनों से नहीं खुली थी। श्यामलाल हरबंस की तरफ ही देख रहे थे।

"मेरा मतलब है···सोच-समझकर काम कीजिए। अगर बीरन की मौत मंजूर कर ली जाए तो सरकार से मुआवजा भी लिया जा सकता है। वह ड्यूटी पर था जब लापता हुआ है। इसकी जिम्मेदारी सरकार की है कि वह या तो उसे खोज कर लाए नहीं तो उसके सहारे जीने वाले लोगों को मुआवज़ा दे···" हरबंस उन्हें समझा रहा था—"इसके लिए भाग-दौड़ करनी पड़ेगी। कार्पोरेशन से लेकर एम्पिओ तक···"

"मैं तो किसीको जानता नहीं।"

"वह सब हो जाएगा। पर पहले आप लोग अपने मन में कुछ तय

तो करें ! इस तरह कुछ नहीं हो सकता । जब तक मन पक्का करके काम नहीं किया जाएगा, कुछ नहीं होगा । सबसे पहले बात जो करनी होगी वह यह कि बीरन की मौत को मंजूर करना होगा । वक्त काफी गुजर गया है पर उसकी मौत को सरकार से मंजूर कराना होगा··· तब आगे कुछ किया जा सकता है।" हरबंस सख्ती और सपाट तरह से बोला था ।

कुछ क्षणों के लिए सन्नाटा छा गया । श्यामलाल ने खामोशी तोड़ते हुए कहा—"इससे पूछो···"

"क्यों अम्मा जी···?" हरबंस ने अपनी सास से पूछा ।

"तुम लोग जैसा ठीक समझो···" रम्मी ने हरबंस से कहा—"आगा-पीछा तुम्हीं सोच सकते हो । मेरी अक्ल काम नहीं करती ।" और वह दोनों घुटनों पर बाँहें लपेटकर बैठ गई ।

"अर्जी शायद आपको ही देनी पड़ेगी···" हरबंस ने रम्मी से कहा ।

"काहे की ?"

"यही जो बताया है···"

"चाहे जो लिखवा लो भइया···हमारा अब रह क्या गया है ।" रम्मी की आवाज भारी थी ।

"इससे आप लोगों के हाथ में कुछ रुपया आ जाएगा···और यह जो रोज-रोज की खिटखिट है, इससे नजात मिलेगी । बाबूजी चाहें तो कुछ काम भी शुरू कर सकते हैं । अपने काम में बड़ी बरकत होती है ।" हरबंस ने समझाया ।

श्यामलाल ने सब कुछ रम्मी पर ही छोड़ दिया था । एक मिनट के लिए लगा भी कि रम्मी के लिए कुछ इन्तजाम हो जाए, समीरा की शादी हो जाए तो अपने लिए ज्यादा फिक्र भी नहीं रहेगी । महीने में पचास-साठ भी मिल गए तो गुजर हो जाएगी···और उन्हें लगा कि वह अब तक किस झंझट में पड़े रहे हैं···घर और पत्नी···और इन्हें जिन्दा रखने की जिम्मेदारी । एक आदमी खुद अपने को लेकर कभी भी आजाद हो सकता है···पर दूसरे ही क्षण उनका मन दुखने लगा ।

तमाम वे यादें तैरने लगी जो उन्हें बहुत पास खींचती थीं। बहुत ज़ोर से जकड़ती थी।

लेकिन जब शाम को वह फैक्टरी के लिए चलते, तब रोज़ यही लगता कि इस झंझट से कहाँ निकल भागा जाए। अकेले अपने सींग लेकर आदमी कहीं भी समा सकता है। रात-भर बैठे-बैठे वह अकेले और निश्चित होने की भावना से भरे रहते, फिर घर लौटने की मजबूरी जैसे उन्हें जबर्दस्ती वापस ले आती। समीरा के बारे में सोच-कर वह परेशान हो उठते। यह लड़की किसी किनारे लग जाए तो वह मुक्त हो जाएँ। आखिर जब हरबंस ने दुबारा यही सवाल उठाया तो श्यामलाल ने कहा—"जैसा तुम ठीक समझो कर दो···"

"मैं ज़रा इधर-उधर पूछताछ करके बताऊँगा। सब बातें पहले मालूम कर ली जाएं, तब कदम उठाया जाए। मुआवज़ा मिल सकता है, यह बात पक्की है। हमारी दुकान के पड़ोस में जो क्राकरी वाला है, उसका भाई फौज में था। वह लापता हुआ था तो उसकी बीवी को खासा मुआवज़ा मिला था। उसके बच्चों को फ्री पढ़ने को मिला था··· मुआवज़े की रकम से उस औरत ने दो कमरे उठवा लिए, अब ठाठ से रहती है।" हरबंस ने कहा।

"पर बीवी और हम लोगों में तो फर्क है···" श्यामलाल बोले—"सोच लो···"

"हाँ, यह बात तो है···" हरबंस ने कहा।

"मैं न होता तो शायद कुछ हो पाता···" श्यामलाल ने कहा, तो "अशुभ की एक परछाईं-सी सबके चेहरों पर छा गई।

"मुझे नहीं चाहिए, मुआवज़ा।" रम्मी ने धीरे से कहा था।

हरबंस अपने किए-धरे पर पानी फिरता देख उदास हो गया। बोला—"हम तो आप लोगों की खातिर ही कह रहे थे। मेरा क्या है···"

"इनकी बातों पर मत जाओ···" श्यामलाल ने उसे समझाया—

"मान लो, मैं न होता और तब बीरन समुद्र में खोया होता···
तो ?···"

"हे भगवान् ! किसी तरह मुझे उठा ले !" रम्मी बुदबुदाई थी और तारा की बच्ची को गोद में लेकर बाहर निकल आई थी।

"तुम पता जरूर करना !" श्यामलाल ने हरबंस से कहा।

"समीरा के लिए भी बात कर लो···" तारा ने हरबंस को याद दिलाया।

"कोई लड़का है ?" श्यामलाल ने उत्सुकता से पूछा।

समीरा जाने लगी तो तारा ने बांह पकड़कर उसे बैठा लिया "तू यहीं बैठ, ऐसी कोई बात नहीं है।"

"नर्स का कोर्स करना चाहोगी ?" हरबंस ने समीरा से सीधा सवाल किया।

"हां !" समीरा बोली।

"समीरा को नर्सिंग कोर्स में भरती करा दिया जाए, यह मेरी और तारा की राय है।" हरबंस ने कहा।

"कितना खर्च पड़ता है ?" श्यामलाल ने पूछा।

"उसके लिए एक ट्रस्ट से इन्तज़ाम करवा दिया जाएगा। हमारे एक चाचाजी ट्रस्ट में एकाउन्टेंट हैं। उनसे कहकर इन्तज़ाम हो जाएगा। ट्रेनिंग पूरी करके जब समीरा नौकरी करे तब धीरे-धीरे पैसा चुका दे···" हरबंस बोला।

"यह हो जाता है ?"

"हां-हां···वे लोग बहुतों की मदद करते हैं।"

"देख लो···"

"मेरे खयाल से तो यह बहुत अच्छा रहेगा।" तारा बोली—"घर में पड़े-पड़े इसकी तबियत भी ऊबती होगी। आजकल नर्सों की मांग बहुत है। पास करते ही कहीं न कहीं नौकरी चट से मिल जाएगी··· ठीक है न समीरा···"

"मैं तो तैयार हूं···" समीरा बोली—"पर दाखिला मिल जाएगा ?"

"तुम्हें थोड़ी दौड़-भाग करनी पड़ेगी।"

"वह तो मैं कर लूंगी…"

"तो बस, यह भी ठीक है। मैं किसी दिन चाचाजी के घर जाकर बात कर आऊंगा। तब तक तुम कोने-खोले का पता कर लो…" हरवंस ने कहा।

रम्मी चाय बनाकर ले आई। उसने दो प्याले लाकर हरवंस और तारा के सामने रख दिए।

"और आप लोग…"

"इनके बाबूजी तो छोड़ चुके हैं!"

"तो आप लीजिए।"

"नहीं…" रम्मी ने धीरे से कहा तो तारा ने आंख के इशारे से हरवंस को मना कर दिया कि उनसे कुछ न पूछे। हरवंस अचकचाकर रह गया। उसे असमंजस में पड़ा देखकर तारा बोली—"अम्मा ने चीनी छोड़ दी है…"

हरवंस ने प्याला उठाकर घूंट भरा। रम्मी बच्ची को प्यार करती रहीं। श्यामलाल अपनी गुदारी हथेलियां खोलने-बन्द करने में लग गए। नर्मदा घड़े से पानी निकालकर गट-गट पी रही थी।

सभी हरवंस पर राय-मशविरे के लिए निर्भर रहने लगे थे। वह खुद मन से चाहता था कि किसी तरह ये लोग दलदल से निकल आएँ।

तारा ने घर का मोर्चा सँभाला और हरवंस ने बाहर का। सबसे पहले तारा ने यह तय किया कि घर में विधिवत् रोना-धोना कर दिया जाए ताकि मोहल्लेवालों को पता चल जाए कि वीरन की मौत हो गई है। समीरा और रम्मी का रोना कई बार हो चुका था, इसलिए उससे लोगों में यह चर्चा फैलने की उम्मीद नहीं थी कि अब वीरन की मौत का स्यापा हो रहा है। वे ज्यादा से ज्यादा यही समझ सकते थे कि माँ को अपने खोए हुए बेटे की याद आ गई होगी, इसलिए फिर रो रही है।

तारा ने अपने घर की पड़ोसिनों को मातम के लिए जमा किया। जब सात-आठ रोनेवालियाँ आ गईं तब तारा ने पहली चीख मारी—"हाय मेरे वीरन···अब तू कहाँ लौट के आएगा!" और रोना-पीटना विधिवत् शुरू हो गया। रम्मी और समीरा तो सचमुच रो रही थीं, पर बाकी औरतें बारी-बारी से शामिल हो रही थीं। एक ने तो शिकायत तक की—"यह भी कोई तरीका है···गला सूखने लगता है···पानी-पत्ता कुछ भी नहीं!" वह औरत नाराजी के कारण अन्त तक नहीं रोई।

"हमें तो साढ़े चार बजे उठ जाना है बहन!" दूसरी ने अपनी मजबूरी जाहिर की, क्योंकि उसका पति घर पहुँचनेवाला था और उसके साथ शाम को उसे कहीं जाना था।

करीब आधे घंटे के लिए बड़ी जोर-शोर का रोना जमा। गली में लोग इकट्ठे होने लगे। चारों तरफ चर्चा शुरू हो गई—"एक

बाबू श्यामलाल रहते हैं। उनका लड़का समुद्र में खो गया था। अभी तक तलाश हो रही थी। आज पता चला कि मर गया है!"

"बड़ा बुरा हुआ साहब!" एक साहब कहते हुए चले गए।

"ए भाई, समुद्र में मरने में बड़ी परेशानी होती है···साली मछली टुकड़ा-टुकड़ा करके खाती हैं···" दूसरे साहब बोले थे।

"मगर आदमी उसमें डूबता नहीं!"

"क्यों?"

"समुद्र के पानी में नमक होता है। भारी पानी होता है!"

घर में स्यापा हो गया था। स्यापे में शामिल होने जो-जो आई थीं, वे जा रही थीं। जिनके पति को आना था, वे पहले ही चली गईं। जो नाराज हो गई थी, वह भी ठुमककर चल दी थी। तीसरी को यहीं से सीधे कीर्तन में जाना था सो वह नाश्ते के लिए रुकी थी। चौथी को अजमल खाँ रोड में कुछ सामान खरीदना था, इसलिए वह साथी की तलाश में थी। पाँचवीं कमरे में जाकर अपनी आँखों में सुरमा डाल रही थी और कह रही थी—"आँखें बुरी तरह दुख रही हैं। लाल हो गई हैं।"

समीरा रोने वालियों की इस बारात के आने का कोई मतलब नहीं समझ पाई थी। मन-ही-मन दीदी के इस व्यवहार पर दुखी भी थी। वह सोचे हुए थी कि जब सब चले जाएँगे तब वह आज दीदी को जरूर फटकारेगी। इस शाम जैसे उसके आन्तरिक दुःख का तमाशा बना दिया गया था। रम्मी खुद मन में नाराज थी। उसकी समझ में तो सब आ रहा था, पर इसकी शक्ल यह होगी, यह उसने भी नहीं सोचा था।

स्यापा कर चुकने के बाद औरतें कच-कच कर रही थीं और पूरे घर में ऐसे मँडरा रही थीं जैसे घूमने आई हों। रम्मी की समझ में नहीं आ रहा था कि उन्हें कैसे विदा किया जाए। वह ज्यादातर औरतों को पहचानती भी नहीं थी।

"आप हमारे साथ अजमल खाँ तक चलो, अभी लौट आना···" उस औरत ने रम्मी को पास देखकर कहा, जो अजमल खाँ पर

दारी करने जाना चाहती थी ।

"मैं !" रम्मी अचकचा गई थी ।

"हाँ-हाँ..."

"तारा को ले जाइए !" गुस्से के कारण रम्मी ने कहा था ।

ह अपना क्रोध छिपा नहीं पाई थी ।

"उसका जाना अच्छा नहीं लगता । सगा भाई था तारा का..."

उस औरत ने दुख प्रकट करते हुए कहा ।

रम्मी बगैर कुछ कहे कमरे में चली गई और कोनों में मुंह देकर बुरी तरह रोती रही ।

कीर्तन में जो जाने वाली थीं, उनके लिए समीरा को चाय बनाकर लानी पड़ी । उनके सिर में दर्द भी होने लगा था । तारा इन्हीं के आस-पास ज्यादा चक्कर काट रही थी । मौका देखकर तारा ने समीरा को बताया—

"जिन्हें तुमने चाय दी है, यही हैं तुम्हारे जीजा जी के चाचा की बीवी !..."

"मैं समझी नहीं..." समीरा ने पूछा ।

"अरे वही चाचा जी, जो ट्रस्ट में एकाउंटेंट हैं, जिनसे तेरी ट्रेनिंग के लिए रुपये का इन्तजाम करवाना है । तू जरा इनसे जान-पहचान कर ले..." तारा ने बहन को समझाया, फिर खुद ही उसे लिए हुए उसके पास पहुंच गई ।

"चाची जी, इसे तो पहचान लिया होगा ? मेरी बहन समीरा !" तारा ने मुसकराकर कहा ।

"शक्ल तो तुमसे बहुत मिलती है बहू !" चाची ने चाय पीते हु कहा—"क्या कर रही हो आजकल बेटी ?"

"कुछ नहीं !" समीरा ने जवाब दिया ।

"इसका कुछ सिलसिला लगवाइए चाची !" तारा ने होंठ फैला कहा—"इन्ट्रेंस कर चुकी है । इण्टर तक पढ़ी है, इम्तहान न पाई ।

"हारमोनियम बजाना आता है ?" चाची ने समीरा से पूछा

"नहीं···!" समीरा ने जवाब दिया।

"आता होता तो अपनी टोली में तुम्हें ले चलते," चाची ने समझाया—"हमारी भजन-मण्डली में जो हारमोनियम बजाती थी, उसके बाल-बच्चा होने वाला है···तुम्हें आता होता तो सत्तर-अस्सी की आमदनी तो कहीं गई नहीं थी। ऊपर से शाल-दुशाले, सटपटी, थाला और फलाहार वगैरह तो बहुत मिलता है···जहाँ जैसा घर हुआ। और इज्जत बहुत होती है। आने-जाने का भी खर्चा नहीं। जो खर्चा करो वह अलग मिल जाता है, अच्छे घरों से राह-रस्म बढ़ती है, वह अलग···"चाची विस्तार से बता रही थीं।

समीरा को सुन-सुनकर बड़ी तकलीफ हो रही थी।

"किसी दिन मैं इसे लेकर घर आऊँगी चाची! चाचा जी से कुछ काम है," तारा ने कहा।

"हाँ-हाँ, जब चाहो ले आना। अपने घर की बेटी है। मिल लेना। जो बताओगी सो काम हो जाएगा···" चाची ने प्याला समीरा को पकड़ा दिया। खाली प्याला लेकर समीरा फौरन वहाँ से हट गई।

जब सब औरतें चली गई, तब रम्मी ने समीरा से कहा—"तमाशा ही हो गया···"

"पता नहीं दीदी का दिमाग कैसे चलता है!"

चलते वक्त तारा समझा गई है कि अब हम लोगों को यह नहीं कहना है कि बीरन समुद्र में खो गया है। यही कहना है कि यह नहीं रहा है!" रम्मी ने उसे बताया।

"इससे होना क्या है!" समीरा चिढ़ी हुई थी।

"तारा कह रही थी कि इसमें कोई कानूनी पेंच है। हरवंस सब पता करके आया है। उस मामले को सुलझवाने के लिए वह शायद पुलिस तहकीकात भी फिर से करा रहा है···मेरी समझ में खुद नहीं आता, पर तारा जो कहती है, अच्छे के लिए ही कहती होगी···" रम्मी ने उसे भी समझा दिया।

और जब सुबह फैक्टरी से लौटकर श्यामलाल कागजों वाला बक्सा खोलकर बैठ गए तब समीरा ने पूछा—"क्या खोज रहे हैं बाबू जी ?"

"मनीआर्डर-रसीदें !" श्यामलाल बोले ।

"कौन-सी ?"

"जो वीरन भेजता रहा है !"

"वो अब कहाँ होंगी !" समीरा ने कहा ।

"जरा उन्हें तलाश । जो भी मिल जाएँ, उन्हें सँभालकर रख देना । उनकी ज़रूरत पड़ेगी । श्यामलाल ने कहा, "जो मनीआर्डर मेरे नाम आए हैं, उनकी रसीदें नहीं चाहिए । तेरी माँ के नाम वाले खत और रसीदें चाहिए !"

"करेंगे क्या ?"

"पहले जो कहा है, वह कर···" श्यामलाल झुँझलाकर संदूक का सामान उलटने-पलटने लगे—"जिरह कर रही है···"

···स्यापा जिस दिन हुआ था, उसके बाद से घर में जो कुछ हो रहा था, वह समीरा की समझ में नहीं आ रहा था । यह सब एकाएक क्या होने लगा ? क्यों होने लगा ? आखिर होने क्या जा रहा है··· यह वह समझ ही नहीं पा रही थी ।

जब एक दिन सुबह श्यामलाल फैक्टरी से घर वापस नहीं आए तब समीरा को चिन्ता हुई । कुछ देर तो वह इन्तजार करती रही, जब देरी काफी हो गई तब उसने माँ से कहा—"आज बाबू जी को बहुत देर हो गई । इतनी देर तो कभी नहीं होती थी ।"

"हाँ···आज वह नहीं आएँगे !" रम्मी ने आहिस्ता से बता दिया था ।

"क्यों ?"

"कुछ बात है ।"

"क्या बात है अम्मा···बताओ न !"

"आज शायद पुलिसवाले तहकीकात के लिए आएँगे···"

"तो बाबू जी का होना और भी जरूरी है !"

"नहीं···वो अमल में पुलिस तो आएगी यह पूछने कि हमें कोई खबर मिली या नहीं···पर हमें यही कहना है कि हमें जो खबरें मिली हैं, उनके मुताबिक वीरन नहीं रहा है···और बाबू जी के लिए अगर पुलिस वाले पूछे तो कहना है कि वह यहाँ नहीं रहते···" रम्मो ने उसे समझाया।

"क्यों यह सब क्या हो रहा है अम्मा ?"

"समझ में मेरी भी नहीं आता बेटो ! जो कुछ तेरे बापू और हरबंस कह रहे हैं, वही करती जा रही हूँ।" रम्मो ने आँसू-भरी आँखों से कहा।

"पहले मुझे तुम कहीं भेज दो, तब यह सब करना···" समीरा बोली थी—"हम लोगों की जिन्दगियाँ सिर्फ खिलवाड़ के लिए रह गई हैं। जो खो गया है, वह भी खिलवाड़ बन रहा है। मुझसे यह सब बर्दाश्त नहीं होता···" समीरा बहुत ज्यादा दुखी थी। वह माँ के सामने पहली बार फूटी थी—"मैं [illegible] जाती हूँ···मुझसे कहा होता। बापूजी [illegible] थी···"

"तू अपने ऊपर क्यों ले रही है [illegible]। वैसे तो तेरे बापूजी को वहीं फैक्टरी में [illegible] मिल जाए। कोठरियाँ बन गई हैं। [illegible] आसानी होगी। किराया-विराया कुछ नहीं है···"

"तो कल ही सामान बाँधकर [illegible]" समीरा बोली—"पर इस तरह तो जी बहुत [illegible]"

"मैं क्या करूँ बेटी···[illegible] मेरा दुःख समझने वाला अब कोई नहीं है [illegible] गया···गहरे सफूद में [illegible] थी। आवाज़ दबाती हुई [illegible] हिल रहा था। [illegible] और बोली।।

मां को लेकर उसने गिलास उनके मुंह से लगा दिया।

दोपहर-भर दोनों अकेली पड़ी रहीं। खाना भी नहीं बना। तकिये के नीचे तीन रोटियाँ रम्मी ने दबाकर रखी हुई थीं, उन्हीं को दोनों ने कच्चे प्याज के साथ खा लिया।

"पता नहीं उन्होंने खाया होगा या नहीं···" कौर को पानी से नीचे उतारते हुए रम्मी ने कहा था।

"क्या पता···"समीरा ने गहरी साँस लेकर कहा था।

दिल्ली वैसी ही थी

दिल्ली वैसी ही थी। उतनी ही खूबसूरत, ठंडी और बेरहम! रम्मी या ममीरा अब कभी खुद अपनी आंखों से देखतीं तो उन्हें लगता कि उनका दुःख कितना छोटा है···इतना छोटा कि किसीको मालूम तक नहीं। जिन्हें मालूम भी था, उन्हें अब याद नहीं। दुःख और सुख—कितने मामूली बनकर रह गए हैं। अब सिर्फ उन्हें लेकर ही पूरी जिन्दगी नहीं गुजारी जा सकती। यहां रहते हुए इन्हें बहुत दूर तक और देर तक साथ नहीं रखा जा सकता। दोनों ही मरने लगते हैं। रिश्ते और रिश्तों के रंग बदल गए हैं। अब घर में बड़ा ही बड़ा नहीं होता। यह सही है कि वह उम्र में बड़ा है और बड़ा ही होता जाएगा पर वह हमेशा बड़ा नहीं रह पाता है। लड़की अब लड़की ही नहीं है। और मां सिर्फ दूध पिलाकर बड़ा करनेवाली धाय भी नहीं है। सब···सब लोग व्यक्तियों में बदल गए हैं···वे अपने को और अपने बाद को पहचानने में लगे हुए हैं। खून के रिश्ते से अलग संघर्ष के रिश्ते कायम हो गए हैं···इसीलिए दुःख और सुख, हंसना और रोना, बहुत मामूली-सी चीजें रह गई हैं। इनका कोई वजूद अब नहीं रह गया है···

अब तो चारों तरफ एक सन्नाटा है···शोर और भीड़ का एक गहरा सन्नाटा! इस सन्नाटे में टूटती, फूलती और उखड़ती सांसों की आवाज है। बदहवासी और संघर्ष है। व्याकुलता और छटपटाहट है। दुखती रगें और तड़कती धमनियां हैं! भीड़ है और भीड़ के रास्ते हैं। यहां कोई अकेला नहीं है···जो पीछे हैं वे भी अकेले नहीं हैं—उनके पीछे और भीड़ है। जो आगे हैं वे भी अकेले नहीं हैं, उनके आगे और भीड़ है। यहां कोई पीछे नहीं छूट सकता। यहां कोई आगे नहीं बढ़

सकता। यहाँ कोई अजनबी नहीं है। यहाँ कोई अपना नहीं है। पराया नहीं है। यहाँ सिर्फ लोग हैं। भीड़ है। यहाँ किसीकी नियति अलग नहीं है···क्योंकि सब हारती हुई पाली के आज़ाद लोग हैं!···बहुत बड़े समुद्र में डूबते हुए जहाज पर चढ़े हुए लोग हैं···जो सिर्फ एक-दूसरे को देखते हैं और हरेक दूसरे को बोझ समझता है, एक फालतू बोझ! एक ख्वाहमख्वाह चलता-फिरता हुआ आदमी—जिसके होने, चलने, और साँस लेने से कोई फर्क नहीं पड़ता।···यहाँ दुःख समेटकर चलने का वक्त नहीं है। यहाँ सुख की बात का भी वक्त नहीं है। यहाँ चारों तरफ एक घेरा पड़ा हुआ है···कुछ आदमियों के घेरे को कुछ और आदमियों के घेरे ने जकड़ रखा है···कुछ और आदमियों के घेरे को कुछ और ज्यादा आदमियों के घेरे ने घेर रखा है···और ये घेरे वहाँ तक चले गए हैं जहाँ तक जा सकते हैं।

और जहाँ-जहाँ यह भीड़ ज़रा छितराई हुई है, वहाँ-वहाँ सड़कें, मकान, स्कूल, अस्पताल, फैक्टरियाँ, खेत, गाँव और शहर उग आए हैं।

समीरा तब से यही सब सोचती और देखती रही, जब से वह नर्सेस होस्टल में पहुँची है। जब भी वह बाहर कदम रखती है, उसे यही सब लगता है। वह भीड़ में है, न आगे है और न पीछे···!

उसे अपनी सफेद वर्दी बहुत अच्छी लगती है और बड़ी शांति मिलती है श्यामलाल की लड़की से 'समीरा नर्स' में बदल जाने से।

···समीरा आखिर करती भी क्या! श्यामलाल धीरे-धीरे अपनी चीजें घर से उठा-उठाकर फैक्टरी वाली कोठरी में ले गए थे। माँ कुछ कह भी नहीं पाती थी। हर रोज उन्हें फैक्टरी से आने और जाने में तकलीफ होती थी। एक रात ड्यूटी पर ही बुखार चढ़ा था तो तीन-चार रोज किसीको पता नहीं चला। घर में यही सोच लिया गया था कि नहीं आए होंगे···और उस घर में बिना श्यामलाल के उन दोनों का रहना मुश्किल होता जा रहा था। समीरा ने कभी सोचा ही नहीं था कि बगैर आदमी के घर में भी कभी रहा जाता है। एक आदमी तो होता ही है। चाहे वह कैसा भी हो। श्यामलाल के न आने

से वह बहुत घबरा जाती थी। उनकी अनुपस्थिति वह बर्दाश्त नहीं कर पाती थी। घर काटने को दौड़ता था। फिर उस घर में अपने रहने का कोई अर्थ भी उसकी समझ में नहीं आता था। जब वह नर्सों के होस्टल में चली आई थी तब रम्मी का सवाल उठ खड़ा हुआ था। वह अकेली कैसे रहेगी।

और तब पता लगा था कि इस महानगर में वह अकेला मसला नहीं था। यह अकेला घर नहीं था जो डूबते हुए जहाज में था। यह अकेला परिवार नहीं था, जिसका कोई समुद्र में खो गया था। होस्टल की छत पर चढ़कर जब भी समीरा चारों ओर देखती तब समुद्र ही समुद्र नजर आता···भीड़ का समुद्र!

हरबंस ने समीरा को भर्ती करा ही दिया था, वही बाकी भाग-दौड़ भी कर रहा था। उसने एक एम्पी (एम०पी०) की मदद से बीरन का केस खुलवाने की कोशिश की थी। नौ-सेना दफ्तर में बीरन के लापता होने वाली सारी फाइलें भी लापता हो गई थीं। नौ-सेना दफ्तर वालों की रुचि ही इस मामले में नहीं रह गई थी। लोग भी बदल गए थे। किसीको यह पता ही नहीं था कि उसकी फौज का एक आदमी लापता है, जिसे अब मारा जाना है। उसे मारा जाना है, यह बात ही उसकी समझ में नहीं आ रही थी।

हरबंस ने एम्पी की राय और मदद से पूरे मामले की उखाड़-पछाड़ शुरू की थी। एम्पी के दबाव से काम कुछ शुरू भी हुआ था। कुछ भागदौड़ शुरू हुई थी।

मुआवज़े के लिए अर्जी दी गई थी। रम्मी के दस्तखत करवाए गए थे। उसमें यही लिखा गया था कि उसका बेटा ही उसकी परवरिश करता था। बेटे का बाप ज़िन्दा तो है, पर जब छोटा ही था, तभी से उसका बाप सारी ज़िम्मेदारियाँ छोड़कर अलग हो गया। माँ ने ही मेहनत मजदूरी करके लड़के को पढ़ाया-लिखाया और जब वह नौ-सेना में चला गया, तब वही माँ की परवरिश के लिए हर महीने रुपये भेजता

।। उनकी देखभाल करता था। अब उसके न रहने से उसकी माँ सहारा हो गई है। चूंकि उसका लड़का वीरेन्द्रनाथ ड्यूटी पर था सलिए बेसहारा माँ को गुजारे के लिए माकूल रकम बतौर मुआवजा ो जाए। साथ ही लड़के की बची हुई तनख्वाह का हिसाब करके वह रकम भी उसे दी जाए और उसका सारा सामान उसकी माँ के हवाले किया जाए।

जिस दिन यह अर्जी दी गई उसी दिन से नाकेबन्दी शुरू हो गई थी। एम्पी की सिफारिश से पुलिस ने मामले को जिलाने के लिए फिर तहकीकात शुरू की थी। हुआ यह कि पुलिस को एक फर्जी रिपोर्ट दी गई थी। रिपोर्ट के सहारे सारा मामला फिर शुरू हुआ था। इस बार यह कोशिश भी की गई थी कि मुआवजे की माँग किए जाने के लिए जिन-जिन बातों की पुख्तगी चाहिए, उन्हें पहले से ही मज़बूत कर लिया जाए, ताकि उसी आधार पर आगे केस बनाया जाए। इसीलिए पति-पत्नी का अलगाव दिखाना ज़रूरी हो गया था। और श्यामलाल फैक्टरी वाली कोठरी में रुक गए थे।

वीरन ही माँ की परवरिश करता था, इसके सबूत में मनीआर्डर-रसीदें और वे खत खोजकर इकट्ठे किए थे, जो उसने जहाज से माँ को भेजे थे। यह बात अच्छी थी कि कुछ दिनों बाद वीरन को माँ के नाम मनीआर्डर भेजने की बात लिख दी गई थी, क्योंकि श्यामलाल घर पर नहीं मिलते थे तो मनीआर्डर वाला डाकिया लौट जाता था। उस वक्त किसी ने यह नहीं सोचा था कि इतनी-सी यह बात बहुत बड़े हक को साबित करेगी।

एम्पी ने भरोसा दिया था कि वह मुआवजा दिलवाकर रहेंगे। इसी कोशिश में सब कुछ हो रहा था। पुलिस को भी रम्मी ने यह बयान दिया था—"मेरा तो कोई आसरा नहीं। पति जिन्दा ज़रूर हैं, लेकिन उनसे मेरा कोई सम्बन्ध नहीं है। लड़के की पूरी परवरिश मैंने की थी। यहाँ इस घर में अकेली पड़ी हूँ। एक पैसे की आमदनी नहीं।

उस लड़के के सिवा मेरा कोई देखने वाला नहीं था।"

हरबंस के साथ-साथ रम्मी भी भाग-दौड़ कर रही थी। नौ-सेना दफ्तर में भी उसने रो-रोकर कहा था—"यह देखिए उसके खत... उसके मनीआर्डर से ही मेरा खर्चा चलता था! मेरा और कौन है?" और इस बात की आधी सच्चाई से उसके आँसू निकल आए थे। हरबंस रम्मी को एकाध बड़े लोगों के पास भी ले गया था और चाहता था कि सरकार पर असर रखने वाले खास नागरिक उसके लिए एक अपील पर दस्तखत कर दें। रम्मी जगह-जगह फरियाद करने जाती। कभी विरोधी दलों के एम्पियों से मिलती, कभी कमिश्नर और दूसरे अधिकारियों से। ट्रस्ट से आर्थिक मदद लेकर उसकी लड़की पढ़ रही है, यह बात भी उसके पक्ष में जा रही थी।

रम्मी के हाथ में हमेशा एक बस्ता रहता। उस बस्ते में बीरन के खत, मनीआर्डर, रसीदें, ट्रस्ट द्वारा ममीरा के लिए रुपये दिए जाने वाले कागज और अर्जियों की प्रतिलिपियाँ वगैरह भरी रहती, वह हरबंस के कहने के मुताबिक जहाँ-जहाँ जरूरत पड़ती, धरना-सा देने लगी थी।

कमिश्नर साहब की कोठी पर तो वह हर सुबह दिखाई देती। मुलाकात हो या न हो, पर वह मौजूद रहती। नार्थ और साउथ एवेन्यू में बसे हुए नेताओं के घर वह बना-जरूरत चक्कर काटती रहती।

और इस तरह जब रम्मी बीरन की मौत के मुआवजे के काम में जुट गई तब बाहर का हाल-चाल देखकर उसे बड़ा साहस मिला था। लगा था कि वह इतनी बेचारी नहीं थी, जितनी कि वह खुद बनी हुई थी या बना दी गई थी। अगर वह पहले बाहर कदम रखती तो शायद इतनी जिल्लत की जिन्दगी उसे न जीनी पड़ती, जो उसने पिछले दिनों जी थी।

एकाध बार श्यामलाल घर आए तो उन्हें ताला बन्द मिला। थोड़ी-थोड़ी देर इंतजार करके वह चले गए। जरूरत पड़ने पर रम्मी अब खुद फैक्टरी तक जाकर उनसे मिल लेती थी और हाल-चाल पूछ आती

थी। कोई राय लेनी होती तो ले आती थी।

पर वह अच्छी तरह जानती थी कि श्यामलाल या उसकी अपनी राय का कोई वज़न नहीं है। धीरे-धीरे वे दूसरों की रायों और उनके फ़ैसलों के गुलाम होते चले जा रहे हैं।

यह कैसे हो गया, कुछ पता नहीं चला। लेकिन यह हो गया था। वे अब दूसरों के फ़ैसलों के मुताबिक जी रहे थे। उन्हीं के मातहत काम कर रहे थे। उनके लिए हुए फ़ैसलों को अपना बनाकर पेश कर रहे थे।

रम्मी थकी-हारी घर लौटती तो सिर पर यह बोझ भी होता कि हरवंस को पूरी खबर देनी है। जब से समीरा ट्रेनिंग के लिए चली गई थी, उसका मन भी घर में नहीं लगता था। वह उठकर तारा के पास चली जाती थी। वहाँ मुन्नी के साथ दिल भी बहल जाता था और हरवंस जब खाना खाने आता तब बात भी हो जाती थी।

तारा को भी घर में एक और हाथ की ज़रूरत महसूस होती थी। पैसा भी इतना था कि आया रखी जा सकती थी। हरवंस ने धीरे से सुझा दिया था—और जो बात उसने सुझाई थी, वह तारा को भी बहुत पसन्द आई थी। इसीलिए एक दिन तारा ने बहुत अपनेपन से माँ से कहा था—"अम्मा, अब तुम यहाँ चली आओ···मेरे पास रहो। वहाँ तुम अकेली पड़ी रहती हो, तो बराबर मन में खटका बना रहता है।"

"मेरा मन बहुत ऊबता है!" रम्मी ने उसकी बात का प्यार महसूस करते हुए कहा था।

"अब देखो न, समीरा होती या बाबू जी होते तो कोई बात नहीं थी। रात-बिरात तुम्हारा वहाँ अकेला रहना ठीक नहीं। मुझे तो उसी दिन से यह खल रहा था, जब से समीरा होस्टल में गई थी, पर झिझक के मारे कह नहीं पा रही थी···" तारा बोली।

"लगता यही है कि लोग क्या कहेंगे?" रम्मी ने अपना संकोच ज़ाहिर किया।

"तुम भी अम्मा!···हम अपनी तकलीफ़-आराम देखेंगे या लोगों को! हम लोग यहाँ न होते तो दूसरी बात थी। यह अच्छा लगता

है कि तुम यों तकलीफ उठाओ?···इसमें अब सोचना-मानना नहीं है। मैं इनसे कह दूंगी। तुम्हें अब यहीं रहना है···तारा ने कहा।

"हरबंस से पूछ लें पहले। लड़के के घर आते···"

"ये तुम्हारे लड़के नहीं हैं? इनसे पूछना क्या है! जो कह दूंगी, मान जाएँगे। तो ठीक है।" तारा ने कहा और उसके खाने के लिए इन्तजाम करने लगी।

हरबंस ने वह किराये का एक कमरे वाला घर भी खाली करवा दिया। मकान-मालिक से उसने पिछले चार महीने का किराया भी छुड़वा दिया। घर का सारा सामान बोरों और चादरों में भर-बाँधकर तारा के घर की परछत्ती पर डाल दिया गया। रम्मी का बक्सा नीचे रहने दिया गया और बरामदे में उसकी खाट पड़ गई। वह तारा के घर में रहने लगी।

बोरों में बन्द परिवार

जितनी तेजी से सारा काम शुरू हुआ था···वह तेजी धीरे-धीरे खत्म हो गई थी। ज़िन्दगी का एक और ढर्रा चलने लगा था। रम्मी जब रात में लेटती तब तारा मुन्नी को उसके पास सुला जाती। धीरे-धीरे मुन्नी अपनी नानी से इतनी हिल-मिल गई कि वह किसी और के पास जाती ही नहीं थी। सुबह उसका हाथ-मुंह धोने से लेकर रात सुलाने तक मुन्नी उसके पास ही रहती। उसे बड़ी खुशी होती···हरबंस ने एक गाड़ी ला दी थी। शाम को वह मुन्नी को तैयार करती और गाड़ी में डालकर पार्क तक ले जाती। अजमल खां पार्क में तमाम आयाएँ बच्चों को लिए हुए मिलती थी। बच्चों के साथ उसे बड़ा संतोष मिलता। वह बैठी-बैठी गप्पें लड़ाती रहती और मुन्नी गाड़ी में या बाहर घास पर बैठी किलकारी मारती रहती।

रात में जब सोती तब कई बार मुन्नी बिस्तर गीला कर देती। वह उठ-उठकर उसकी पज्जी बदलती और नींद-भरी आँखों से उसे देखती।

जब नींद टूट जाती तब दुनिया भर के ख्याल आते—परछत्ती पर बोरों में बन्द सामान पर नजर जाती तब एक हूक-सी उठती···यह सब क्या हो गया है! एक घर बोरों में बन्द हो गया है। एक परिवार परछत्ती पर बोरों में बन्द पड़ा है। वह परिवार जो अपनी जड़ें धरती में रोपने के लिए जी-तोड़ कोशिश कर रहा था। सबने अपनी-अपनी जरूरत की चीज़ों को अलग कर लिया था।

···श्यामलाल अपने कपड़े, जूते, बिस्तर और चश्मा उठा ले गए थे। खाने-पीने के लिए एकाध प्लेट, चम्मच और एक गिलास ले गए थे। अपनी दवाइयों के नुस्खे लपेटकर ले गए थे···और समीरा गई

तो यह अपना बक्सा ले गई थी। अपनी सुइयां, कंघा, पाउडर का डिब्बा, चप्पलें और कुछ किताबें-कापियां ले गई थी। रम्मी उठकर यहाँ आई तो उसने अपना सामान अलग कर लिया था···बक्से में भर कर उसे बरामदे मे रख लिया था।

और सब परछत्ती पर रखा बोरों में बन्द सामान सिर्फ वह था, जो किसी एक का नही था···जो सबका हुआ करता था···जिसपर सब मिल-जुलकर बराबर का हक रखते थे। जो किसी एक का निजी नहीं था···पूरे परिवार का शामिल सामान था। परछत्ती पर रखे उस सामान को देखकर रम्मी को बड़ी चोट लगती···अब यह परिवार इसी तरह बोरों में बन्द घर की परछत्तियों पर रखा रहेगा···धीरे-धीरे ये चीजें बेकार और बहुत पुरानी पड़ जाएँगी···कपड़ों में सीलन की गन्ध आने लगेगी। उनके तार-तार अलग हो जाएँगे। चीजों पर मुर्दनी छा जाएगी और एक दिन वह कूड़े-करकट में बदल जाएगा। सब इसे बगैर छांटे ही बोरों समेत फेंक दिया जाएगा।

लेटे-लेटे उसे समीरा का ख्याल आता···और श्यामलाल का···यह सब कैसे हो गया? वह कौन-सी ताकत थी जिसने उन्हें इस तरह तीन जगहों पर फेंक दिया। सबकी अपनी-अपनी जगहें हैं। एक जगह से सिर्फ एक का सम्बन्ध है, बाकी लोग असम्बद्ध हैं।

फिर उसे समुद्र दिखाई देता—और एक टापू···उस टापू से कोई छाया हाथ हिलाती है। वह तिलमिला जाती, उसके बदन में पसीना छूटने लगता और तरह-तरह की आहटें आने लगतीं···बीरन गुनगुना रहा है···दबे पैर रसोई में गया है···चीनी का डिब्बा खुलने की आवाज आई है।

···क्यों समीरा, वे मल्लाह कितने बरसों बाद लौटे थे···पर समीरा तो यहाँ नहीं है। वह कहीं और, किसी और इमारत के बरामदे या कमरे में सो रही होगी। और श्यामलाल कहीं और, किसी और छप्पर के नीचे या कोठरी में सो रहे होंगे या फाटक पर बैठे जाग रहे होंगे।

उसने मुन्नी को अपनी छाती से भींच लिया था। सारा तकिया

सुओं से तर हो गया था ।

सुबह वह कमिश्नर साहब की कोठी पर जाने के लिए धोती बदलने
ी तो तारा ने टोका था—"अम्मा रोज़-रोज़ वहाँ जाके क्या
गा ?"

रम्मी चुपचाप उसे देखती रह गई थी ।

हरवंस नहाकर निकला तो उसने धीरे से पूछा—"तुमने कुछ और पता किया बेटा !"

"हाँ-हाँ···वह सब चल रहा है । पर इन कामों में देर लगती है । असल में नौसेना वालों का कोई लगाव इस मसले में नहीं रह गया है । उनके लिए यह केस खत्म हो चुका है । कोई कम्बख्त सुनता ही नहीं···" हरवंस ने कहा ।

"तुमने किसी और एम्पी के ज़रिए सुरक्षामन्त्री से बात करने को कहा था···तुम कहो तो मैं मिल आऊँ ?" रम्मी ने पूछा ।

"अब आपके मिलने से कुछ नहीं होगा । आपका काम खत्म हो गया । अब तो कागजी दौड़ रह गई है । इसके लिए मैं लोगों को खट-खटाता रहूँगा । और अब आपको फिक्र काहे की है···घर में आराम से बैठो···" हरवंस ने कहा—"काहे को इस बुढ़ापे में परेशान हो रह
हो ! सरकारी काम तो राज-रोग होता है । मुआवजा वसूल ज़रूर हो
···कोई मज़ाक तो है नहीं···"

रम्मी घर में रह गई । मुन्नी में वह फिर उलझ गई । ता
धीरे-धीरे उसे खाना बनाने का काम भी सधा दिया था—"तु
हाथ का खाना इन्हें बहुत पसन्द है ! कहते हैं, जब से अम्मा ने
शुरू किया है, मेरा पेट भरने लगा है···"

"तेरा शुरू से चौके-रसोई में मन नहीं लगता था···खाना ब
शौक समीरा को खूब है !" रम्मी ने गर्व से फूलकर कहा ।

"समीरा इधर काफी दिनों से नहीं आई । दो इतवार
गए···न हो आज हम-तुम चलकर उसे देख आएँ ! हरवंस

जाए तब चले चलेंगे…" रम्मी ने कहा।

"आज कैसे जा पाओगी अम्मा! इतने तो कपड़े धोने को पड़े हैं। चार तुम्हें इसी में बज जाएँगे। आधी मेहनी तो इस चुड़ैल मुन्नी की होती है। तुमने इसकी आदत बहुत खराब कर दी है अम्मा… अपने लिए ख्वामख्वाह काम बढ़ा लेती हो!" तारा अपनी बात का असर देखती जा रही थी। जब रम्मी के चेहरे पर एक भी शिकन नहीं आई तब वह निश्चिन्त हो गई और उसने अपनी एक साड़ी और भीगते कपड़ों में डाल दी।

सब कुछ जैसे फिर थमता जा रहा था। रम्मी देखती रही और सोचती···सब काम ढीले पड़ गए थे। हरवंस कतई भाग-दौड़ नहीं कर रहा था। वह तैयार होकर बैठ जाती और वे दोनों कहीं निकल जाते। चलते-चलते कह जाते "अम्मा, खाना बनाने के लिए परेशान मत होना···"

पर उसे तो भूख लगती थी। वह मुन्नी को गोद में लिए-लिए तन्दूर तक जाती। अपने लिए कौन खाना पकाए। दो रोटियाँ और दस पैसे की दाल गिलास में ले आती।

और जब से तारा के पैर फिर से भारी हुए थे, वह बिल्कुल नहीं उठती थी। बात-बात में चिड़चिड़ाती थी। रम्मी को सब काम देखना पड़ता था। मुन्नी को साथ में सँभालना था।

हरवंस कभी-कभी समीरा को खुद जाकर बुला लाता था तो ता के माथे पर तेवर पड़ जाते थे। पर हरवंस उसे समझा देता था- "तुम्हें देख जाती है···कोई और नर्स आती तो दस-पाँच लेती नहीं ?"

पर तारा को वह मंजूर नहीं था। समीरा भी बात को स गई थी। उसने आना-जाना लगभग बन्द कर दिया था। वह कभी माँ से मिलना भी चाहती तो मन मारकर रह जाती।

श्यामलाल छठे-सातवें उसके होस्टल में पहुँच जाते थे और पूछ कर चले आते थे। कभी-कभी उसकी हथेली पर जब चार रुपये भी रख आते थे। कहीं होस्टल के मैदान में बैठ दुःख-सुख की दो-एक बातें करते···अपनी कमज़ोर पड़ती

हाल बनाकर कमर-दर्द की बात बताते···समीरा उन्हें अपने कमरे में लाकर कभी दस-बीस गोलियाँ देती, कभी दवाई की कोई शीशी।

श्यामलाल वह गोलियाँ और शीशी ला-लाकर अपनी कोठरी के ताख में जमा करते जाते। जब कभी बहुत दर्द होता तब एकाध गोली खा लेते। उन्हें तसल्ली यही था कि समीरा अब किसी लायक हो गई है। महीने-दो महीने में वह एकाध चक्कर तारा के घर का भी लगाते। कभी-कभी शाम तक रम्मी की खाट पर आराम करते रहते। बीरन वाले मामले के बारे में पूछताछ करते—"कुछ और हुआ ?"

"दो महीने से कुछ पता नहीं चल रहा है। हरबंस को वक्त ही नहीं मिलता ! तारा की हालत ऐसी नहीं कि छोड़कर कहीं आ-जा पाऊँ···" रम्मी गहरी साँस लेकर कहती।

"तो इस तरह कब तक चलेगा···"

"क्या पता···"

"हमारा भी कुछ ठीक नहीं, नहीं तो तुम यहीं चली चलती।"

"क्यों क्या बात है ?"

"आठवें-दसवें फैक्टरी में चोरी हो जाती है। रात-रात भर मैं जागता हूँ पर पता नहीं माल कब उड़ जाता है। असल में हमारे यहाँ कुछ नये मजदूर भर्ती हुए हैं, चोर हैं !" श्यामलाल ने कहा।

"तो उनकी खबर मालिक को दे दो···"

"हाँ···पर अकेला आदमी हूँ···उन चोरों का क्या ? किसी दिन दुश्मनी निकाल लें !" श्यामलाल ने कहा।

"सोच-समझकर करना, जो भी करना···" रम्मी कह तो गई पर कहते हुए उसे लगा कि बात की डोरी एकाएक कहाँ से आ गई उसकी जुबान में, जैसे किसी पराये को राय दे रही हो। और यह सच भी था कि श्यामलाल की तकलीफ-आराम अब उसे ज्यादा नहीं व्यापते थे। दोनों के बीच में अजीब-सी ठण्डक समा गई थी। उसे तो यह भी पता नहीं कि उनका बदन अब कहाँ-कहाँ और दुखने लगा है या कपड़े कौन-कौन से हैं। सर्दियों के लिए उनके पास पूरे कपड़े हैं भी या नहीं। वक्त से खाना-पीना होता है या नहीं। बात करने को मन चाहता है

से बातें करते हैं···।
ीरन की माँ···सब बिखर गया···" एकाएक खाट पर बैठते
ामलाल ने कहा।
"भगवान की मर्ज़ी है!"
"हाँ, और क्या···ठीक है!"
रम्मी ने मुन्नी को उनकी गोद में बैठा दिया। श्यामलाल उसके
ों को सहलाने लगे। फिर कुछ देर बाद उठकर बोले—"अच्छा
ं···तारा कहाँ है? उससे भी कह दें!"

"वह सो रही है। दरवाज़ा बन्द है," रम्मी ने कहा।

श्यामलाल चलने लगे तो दरवाज़े तक रम्मी उन्हें मेहमान की तरह छोड़ने आई। दरवाज़े पर रुककर उन्होंने धीरे से पूछा—"तुम्हें कोई तकलीफ तो नहीं है?"

"तुम्हीं कौन आराम से रह रहे हो···"गहरी सांस लेकर रम्मी ने कहा।

"हम तो मौज में हैं!" श्यामलाल ने जवाब दिया तो आँखें भर आई।

"कोई दिक्कत हुआ करे तो चले आया करो···कोई आता-जाता रहे तो खबर भिजवा दिया करो। मेरा निकलना तो मुन्नी के मारे नहीं होता!"

श्यामलाल ने मुन्नी को प्यार से चुमकारा, उसके गाल थपथपाए और सड़क पर चल दिए। वहाँ से चलकर वह पुराने मकान के पास से होते हुए आर्यसमाज रोड पर खड़े छोटे-से पीपल के नीचे आकर रु
गए···! समुद्र उसी तरह हिलोरें ले रहा था।

कहाँ क्या बीत रहा था, किसीको पता नहीं था। कौन कहाँ
रहा था, किसीको मालूम नहीं था। सिर्फ अखबार की सुर्खि
वे खबरें थीं जिनमें कुछ हो रहा था···दो पैसे देकर श्यामलाल ने
अखबार पढ़ने के लिए उठा लिया था। दूर-दराज़ दुनिया में

कूट हो रहा था। जगह-जगह लड़ाइयाँ चल रही थीं। जगह-जगह अकाल पड़ रहे थे। बाढ़ें आ रही थीं…खून बह रहे थे। राहजनी और डाके पड़ रहे थे। और कुछ लोग बयान दे रहे थे…योजनाएँ बना रहे थे। दूसरों की आवाज़ में बोल रहे थे। अखबार से बड़ी राहत मिली जब उन्हें अहसास हुआ कि सिर्फ वह ही दूसरों की आवाज़ में नहीं बोल रहे हैं…वे, जो कहते हैं कि उनकी आवाज़ अपनी है, वे भी दूसरों की आवाज़ में बोल रहे हैं। यह हादसा सिर्फ उनके साथ ही नहीं हुआ है। इसकी लपेट में सब फँसे हुए हैं।

मुख के पन्ने पर उन्होंने एक नज़र और डाली। मोटी-मोटी सुर्खियाँ फिर से देखीं…कहीं कोई देश है वियतनाम जहाँ के लोग आज़ादी के लिए कुर्बानी दे रहे हैं…उन्हें ताज्जुब हुआ, कि उनके पास ऐसा क्या है, जिसके लिए वे लड़ रहे हैं…उनकी कुछ यादें होंगी, शायद कुछ ज़िन्दगी में होगा, शायद उनके घर होंगे, घर वाले होंगे…शायद उनका मोहन जैसा कोई बेटा होगा, खेत होंगे, खलिहान होंगे—जिनपर कोई खतरा आया होगा और वे लड़ने के लिए उठ खड़े हुए होंगे।"…अगर लड़ाई यहाँ आ जाए तो क्या है, किसे कोई बचाएगा? उन्होंने अखबार तह करके वहीं रख दिया, जहाँ से उठाया था और चुपचाप रास्ते पर बढ़ गए।…पर बार-बार वह यही सोचते जा रहे थे—कि मान लो लड़ाई आ जाए तो वह किस चीज़ को बचायेंगे? क्या है उनके पास, जिसे बचाने के लिए वह लड़ेंगे।

वह गली से मुड़कर गन्दा नाला पार करते हुए फैक्टरी की ओर आगे चलते जा रहे थे।

ाह कितने बरस में लौटे थे

कुछ दिन बाद हरवंस ने एकाएक खबर दी—"बस, अब काम बनने वाला है ! एक एम० पी० ने भागदौड़ करके अपनी मदद करवा दी। अब काम हो जाएगा।"

"मुआवज़ा कितना मिलेगा ?" तारा ने पूछा।

"अभी मुआवज़े में तो देर लगेगी पर बीरन ने पाँच महीने की तनख्वाह नहीं ली थी। वह दक्षिण ध्रुव चला गया था न छुट्टी लेकर, तभी की तनख्वाह बाकी पड़ी है। वह पूरी तनख्वाह और उसका सामान मिल जाएगा। जिस वक्त सरकार सामान लौटा देगी, उस वक्त अपने आप यह तय हो जाएगा कि सरकार ने उसकी मौत को मंजूर कर लिया है। तब ज़ोर-शोर से मुआवज़े का केस चलेगा।" हरवंस बड़े उत्साह से बता रहा था।

"चलो, अम्मा का एक काम तो तुमने किया।" कहकर तारा ने माँ की तरफ देखा। उनके चेहरे पर कोई प्रतिक्रिया नहीं थी। वह पत्थर की तरह दीवार से पीठ लगाए बैठी थीं।

"सुना अम्मा ! यह सब ठीक कर आए हैं अब मुआवज़े के पैसे भी मिल जाएँगे…" तारा ने उत्साह से कहा।

"जो हो जाए सो ठीक है…" रम्मी ने धीरे से कहा।

जिस दिन बीरन की तनख्वाह का चालान और सामान मि[illegible] वाला था, उस दिन हरवंस के ही घर सब जमा हुए थे। श्यामला[illegible] आ गए थे और समीरा भी छुट्टी लेकर आ गई थी।

और जब वह नौसेना दफ्तर की तरफ चले थे, तब सब[illegible]

बहुत उदास थे। चेहरे लटके हुए थे। जैसे वे बीरन की लाश लेने जा रहे हों। वहाँ पहुँचकर हरबंस भीतर चला गया था। श्यामलाल समीरा और रम्मो वहीं बाहर पाकड़ के पेड़ों के नीचे बैठे थे। तारा नहीं आ पाई थी।

कुछ देर बाद हरबंस रम्मो को भीतर बुलाकर ले गया था। वही वारिस थी उसकी। बीरन की मां की शनाख्त के लिए हरबंस ने पहले से ही लोग जमा कर रखे थे। शनाख्त हो जाने के बाद पांच महीने की तनख्वाह का चालान रम्मो के हाथों में दे दिया गया था। बीरन का बक्सा भी उसे सौंप दिया गया था।

श्यामलाल और समीरा उतावले से दरवाजे की तरफ देख रहे थे। पहले रम्मो निकली। हाथ में एक कागज लिए हुए और फूट-फूटकर रोती हुई। उसके पीछे हरबंस था। वह एक चपरासी के साथ बीरन का काला बक्सा उठवाए हुए आ रहा था।

सबकी आँखें नम थीं। जैसे-तैसे वे घर पहुँचे थे। घर पहुँचकर जब बीरन का बक्सा खोला गया तब एक-एक चीज देख-देखकर सब बेतरह रोते जाते थे। रम्मो बिलख-बिलखकर रो पड़ी थी—"हाय मेरे बीरन···तू कहां खो गया मेरे बेटे···"

घर में सन्नाटा छा गया था। उस सन्नाटे को सिसकियाँ, रह-रहकर जोर से रोने की आवाज और हिचकियाँ तोड़ रही थीं। रम्मो को फिट आ गया था। उसकी दाँती भिंच गई थी और हाथ-पैर ठण्डे पड़ गए थे। समीरा उसे होश में लाने की कोशिश कर रही थी। श्यामलाल दीवार का सहारा लिए आँखों पर हाथ रखे सिसक रहे थे।

हरबंस बड़े भारी दिल से एक-एक चीज निकाल रहा था। वर्दी और पेटी थी। एक पैकिट में कुछ नये कपड़े थे। माँ और बहन के पैरों के नाप थे। शेविंग का सामान और एक कैमरा था। सुई-डोरा और बटन थे। और नीचे दबे कागजों में तीन रुपये और बीरन के नाम लिखे हुए कुछ खत थे। वे सारे खत एक रबर-रिंग में फँसे हुए थे।

समीरा ने आकर सामान को एक-सा करना शुरू कर दिया था। हरबंस ने खतों का वह बण्डल भी उसे दे दिया। [illegible] ने निगाहें

की कोशिश की पर पहचान नहीं पाई। धीरे से उसने एक
ला, नज़र डाली और उसकी आँखें डबडबा आई। नमता ने,
ख़त वीरन को लिखे थे…उन्हें वीरन ने बहुत सँभालकर
या।

रम्मी होश में आते ही ज़ोर-ज़ोर से रोने लगी थी। दीवार से
टिकाए श्यामलाल ने अपनी आँखें दबाते हुए वहीं से कहा—
न्द कर दो समीरा…अब क्या देखना…"

समीरा ने संदूक ज्यों का त्यों बन्द कर दिया था। उस दिन घर
सब लोग एक-दूसरे से अलग-अलग पड़े रहे। मुन्नी उनके पास
आती-जाती रही।

शाम को श्यामलाल अपनी फैक्टरी लौट गए। समीरा भी होस्टल
चली गई। तारा ने माँ को बहुत सँभाला। जैसे-तैसे वह ठीक हुई तो
उसने कहा था, "अम्मा, अब इस रोने-धोने में कुछ नहीं रखा है।
बेकार अपना दिल खराब करती और कलपती हो…हौसले से काम
लो। क्या मुझे बुरा नहीं लगता? पर हम कर क्या सकते हैं!"

"…अब इन बातों में कुछ नहीं रखा है माँ जी…" हरबंस ने
कहा—"जो लौटकर आने वाला नहीं है उसके लिए…" कहते-कहते
वह चुप हो गया।

जैसे-तैसे उसने वीरन का संदूक भी परछती पर चढ़ा दिया औ
सोने चला गया।

"आज मुन्नी को ज़रा ज़ुकाम है। ख्याल रखना अम्मा!" ता
ने कहा और वह भी सोने चली गई।

रम्मी फटी-फटी आँखों से परछत्ती की ओर ताकती रही।
सो गई थी…फिर उसने समुद्र को देखा…हहराता हुआ समुद्र
कोई ओर-छोर नहीं था। जिसमें खोए हुए आदमी के बारे में

चला सकता था। और उसी समुद्र में वह डूबती चली गई…चारों तरफ पानी था…उसके कानों में, आँखों में, पेट में सारा पानी भर गया था और साँस रुकने लगी थी। रुकती साँस में एक दम आँखें खुलीं तो चारों तरफ घुप अँधेरा था। चारों तरफ समुद्र की मनहूस खामोशी छाई हुई थी।

"…क्यों समीरा…वे मल्लाह कितने बरस में लौटे थे!" पर समीरा वहाँ कहाँ थी।

समीरा होस्टल के अपने कमरे में पड़ी थी। बार-बार उसे यही लग रहा था कि ममता ने उससे कभी कुछ क्यों नहीं कहा।

श्यामलाल फाटक पर बैठे भीतर की आवाजें सुन रहे थे। बड़ी भट्ठी में लोहे की चादरें तपाई जा रही थीं। चादरें अंगारों की तरह लाल हो गई थीं और कोई मशीन उन्हें दबा रही थी। उसकी धक-धक, किम्-किम् करती आवाज आ रही थी। चादर में से चिनगारियाँ छिटक रही थीं। लोहा जलने की महक चारों तरफ भरी हुई थी।

तभी रेल की पटरियों की धड़कने की आवाज आई थी। सुबह के तीन बज गए थे। कूड़ा गाड़ी के डिब्बे खिचर-खिचर करते हुए चले आ रहे थे। पूरा इलाका दुर्गन्ध से भर गया था।

और उनके सामने फैला था—महासागर…रात का समुद्र हिलोरें ले रहा था। वह ज्यादा दूर तक नहीं देख पा रहे थे। जैसे गहरे पानी में नजर कैद हो जाती है, वैसा ही लग रहा था और वह सोच रहे थे कितनी तकलीफ हुई होगी बीरन को…कितनी रूब-घुट में जान फँस गई होगी। कितनी घबराहट हुई होगी!…पर मौत को मंजूर करना किसकी ताकत में है! क्या पता, वह घबराकर कहीं और चला गया हो …वैसे ही जैसे वह खुद चले आए हैं…और शायद किसी दिन घर लौट आए…पर अब लौट भी आया तो क्या? लहरों ने सबको कहाँ-कहाँ फेंक दिया है…कोई एक लौट भी आया तो सब लौट आएंगे, इसका क्या पता…?

कूड़ा-गाड़ी गुजर गई थी। सन्नाटा बहुत गहरा हो गया था। वह स्टूल से उठकर अँधेरे में टहलने लगे थे। भीतर लोहे की चादरें तप रही थीं···डाई मशीन का फर्मा लाल-लाल चादर पर पड़ता तो चिनगारियाँ छिटकती थीं और लोहे की चादर कट कर फावड़े की शक्ल में बदल जाती थी।